'धर्म अधिक लोगों में मेल पैदा नहीं कर सकता। वह केवल छोटे से जनसमुदाय में ही मेल पैदा कर सकता है। इसलिए कला साहित्य भी थोड़े से लोगों में ही मेल पैदा कर सकती है। किन्तु अत्याचार संसार में एक ऐसी अद्भुत वस्तु है जो इन थोड़े से समय में भी एक दम मनुष्यों के बड़े से बड़े भाग में भी फैल और मेल पैदा कर देता है। आज तक के मानव जाति के इतिहास का एक एक पन्ना इस सत्य की दुहाई दे रहा है।'

लोके

विषय - सूची

महाविद्यालय वाग्वर्धिनी सभा द्वारा प्रकाशित

"राजहंस"

पाक्षिक-पत्र तिथि

परिवर्तन

आज सम्पूर्ण मनुष्य-संसार एक बड़े भारी परिवर्तन के युग में से गुजर रहा है जिधर आंख उठा कर देखें उधर परिवर्तन ही परिवर्तन नजर आता है। सम्भवतः यह सृष्टि का नित्य और स्थायी गुण है इसलिए हमारे प्राचीन पुरुषों ने इस संसार को परिवर्ती लिखा है। परन्तु उन्नीसवीं सदी से चल कर बीसवीं सदी के उत्तरोत्तर विकास के साथ २ क्रान्ति की भावना ने इसको और बढ़ा दिया है और यहां तक क्रान्ति तथा परिवर्तन शब्द पर्याय रूप से प्रयुक्त होने लग गया है। प्रत्येक वस्तु बदल रही है। फैशन तो पलक मारते बदल जाते हैं। विचार इतनी तीव्रता से बदल रहे हैं कि कभी २ उन में सामञ्जस्य तक स्थापित करना कठिन हो जाता है। कहीं २ पर इस बात ने भयंकर रूप भी धारण कर लिया है पर इस में कोई सन्देह नहीं कि आज किसी बात की मान्यता के लिए प्राचीनता कोई स्थान नहीं रह गई है।

हमारा गुरुकुल भी इससे अछूता नहीं रहा है और न रह सकता है। यदि हम विश्लेषण करके गम्भीरता पूर्वक अपने कुल के चतुर्मुख विकास पर दृष्टि डालें तो जल्दी ही पता लग जाएगा कि इसका सबसे महत्व पूर्ण तत्व "परिवर्तन" है इस कुल की तो नींव ही क्रान्ति और परिवर्तन की भावनाओं के परिणाम स्वरूप रक्खी गई थी। इस अवस्था में परिवर्तन से भयभीत होना हमारी परिपाटी और शान के विरुद्ध है। परन्तु इस बार जिस परिवर्तन की ओर विचारकों का ध्यान जाता है और इस से पूर्व भी जा चुका है वह जरा अधिक गम्भीर और नदियों के मार्ग में रुकावट रूप भी है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छा और अपने विश्वासों का असर दूसरों पर डालना चाहता है और चाहता है कि सब उससे सहमत हों और उसके आदेश को स्वीकार करें। यद्यपि व्यवस्थित कार्यक्षेत्र में पड़ने के पश्चात मनुष्य का यह विचार भी कुछ शिथिल पड़ जाता है परन्तु प्रारम्भिक जोश और उमङ्ग की अवस्था में तो यही सूझता है "क्या कारण है कि मैं असफल हो जाऊं? मनुष्य मेरी सम्मति की स्वयं कद्र करेंगे"। मनुष्य का यह आत्म विश्वास समय की गति और कार्य क्षेत्र की सीमाओं के अन्दर उलझ कर मन्द पड़ जाता है। यही बात हमारे गुरुकुल में हो रही है और होगी यहां भी सुधार और तदनुकूल परिवर्तन की चर्चा आम सुन पड़ती है। संस्थाओं का इतिहास बताता है कि इन सुधारों और परिवर्तनों के लिए सब से अनुकूल समय व्यक्तियों के

परिवर्तन का समय होता है। पुराने आदमी की एक तो कार्य की दिशा स्थापित हो चुकी होती है और फिर उसे सलाह कार भी कुछ सोच समझ कर और नाप तोल कर तथा सङ्कोच से सलाह देते है। पर जब कोई नवीन व्यक्ति किसी नवीन कार्य क्षेत्र में प्रवेश करता है तब एक तो उसकी अपनी भावनाएं और महत्वाकांक्षाएं होती हैं फिर और मनुष्य भी अपनी सलाह प्रगट करने का उसे उचित अवसर समझते हैं। गुरुकुल में भी आचार्य और मुख्याधिष्ठाता आदि के परिवर्तन के साथ उपरोक्त प्रवृत्तियां उद्भूत होती नजर आती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि अनेक बातें बदल डालने का सङ्कल्प कर लिया गया है। और किसी २ क्षेत्र में तो "मौलिक परिवर्तन" तक करने का विचार किया जा रहा है। जिन्होंने नवीन आचार्य श्री. पं. देवशर्मा जी के "गुरुकुलजन्मोत्सव से लेकर अब तक के भाषण सुने हैं उनको स्थल २ पर इसकी गन्ध अनुभव हुई होगी। हम तो उचित और सामयिक परिवर्तनों के दृढ़ पक्षपाती हैं और इन सब बातों का सहर्ष स्वागत करते हैं पर बिना विवेक के आँख मूँद कर कोई भी काम करना और फिर परिवर्तन करना हम अत्यन्त हानिकारक समझते हैं।

जिन २ परिवर्तनों पर अधिकारियों की आँख है उन सब पर हम समयानुसार अपने विचार पाठकों के सामने उपस्थित करते रहेंगे। इस लेख में हम केवल एक बात की ओर ही पाठकों का ध्यान खींचना चाहते हैं जो कि सामयिक है और जिस पर सब ओर से ज़ोर दिया जा रहा है। वह है - हमारे गुरुकुल का जीवन और शुल्क समस्या।

आज बहुत से संस्था के उच्चाधिकारी और अन्य महानुभाव इस बात को बड़ी तीव्रता और आकुलता से अनुभव कर रहे हैं कि गुरुकुल chief's college बन रहा है कुछ एक तो शौकिया और बचाव के लिए भी कह डालते हैं कि ये सब बातें chief's college की हैं। हम इस बहस में यहां नहीं पड़ते कि chief's college क्या चीज होती है और क्या वह अपने आप में कोई बुराई है। देखना तो यह है कि गुरुकुल को कहां तक chief's college कहा जा सकता है और इसका क्या इलाज है। हम इस बात को खूब समझते हैं कि यदि कोई आदमी गुरुकुल की नियमावली पढ़ कर गुरुकुल में आए तो उसे पहिले पहिल यही अनुभव होगा कि वर्तमान गुरुकुलीय जीवन उसकी कल्पना से कहीं अधिक चैन और आराम का है। हम स्वयं स्वीकार करते हैं कि हमारे आश्रम में भी कुछ ऐश और आराम आ गया है। हम तो अपने आश्रम, कार्यालय, औषधालय, परिवार और अन्य विभागों से भली भाँति परिचित हैं। और आन्तरिक प्रक्रिया को जानते हैं अतः यह कह सकते हैं कि यह सब चीजें नियमावलि से तो कोसों दूर हैं। इन सब का क्या कारण है सो यहां लिखने की आवश्यकता नहीं है। गुरुकुल अब कोई प्राचीन काल जैसा जङ्गलों का आश्रम वा कुल नहीं रह गया है। यह एक 'महान् संस्था' के रूप में विकसित हुआ है जिसने कि इसमें अनेक अच्छाइयों और बुराइयों का समावेश कर दिया है। बुराइयों से हम काफ़ी परिचित

है और शीघ्र से शीघ्र उनका नाश चाहते हैं। परन्तु इतना होने पर भी chief's college का भूत हमें इतना नहीं सताता जितना कि कई और भाइयों को सताता है। इस कुल के तो संस्थापक स्वयं शाही तबीयत के थे। और हमारा विचार है कि जिन बातों और प्रवृत्तियों को आज शाहाना और chief's college कहा जाता है वे उनके द्वारा तथा उनके उत्तराधिकारियों के द्वारा चलाई गई कुछ एक बातों का स्वाभाविक परिणाम है सम्भव है कि कई बातें वर्तमान अधिकारियों को chief's college की प्रतीत हों जो कि प्राचीन अधिकारियों को न होती रही हों। इस में एक बात और भी काम कर रही नजर आती है। सम्भव है कि वह बात न हो व मिथ्या ही हो। छोटी उमर से ही बच्चा मां बाप से अलग होकर गुरुकुल में प्रविष्ट हो जाता है। यहां उसका कितना भी लालन पालन क्यों न हो पर माता पिता की कमी को पूरा करना कठिन है। माता का सरल, शान्त और शीतल प्यार प्राप्त कर सकना तो नितान्त असम्भव है। कई बातें ऐसी होती हैं जिनको कि माता पिता अपने बच्चों के लिए आवश्यक समझते हैं पर उनके अतिरिक्त जिम्मेवार एक और व्यक्ति भी ऐसा ही समझे सो आवश्यक नहीं। गरीब से गरीब माता पिता भी जिस बात को बच्चे के लिए आवश्यक समझें वह किसी और की दृष्टि में अनावश्यक और luxury हो सकती है। यद्यपि हम चाहते हैं कि इस कुल के जितने अधिक सदस्य अपने बर्तन स्वयं साफ करें इतना ही अच्छा है परन्तु इस में भी कोई सन्देह नहीं है कि गरीब से गरीब मां बाप भी घर में बेटे को बर्तन प्राय नहीं मांजने देते। chief की बात तो अलग रही। यह ठीक है कि इसी लिए आवश्यक हो जाता है कि बच्चे को मां बाप से अलग रख कर शिक्षा दी जाए क्योंकि वे अपनी स्वभाव सुलभ त्रुटियों के कारण सब कुछ नहीं सिखा सकते परन्तु मातृपितृ भावना से विरहित उपरोक्त अनियमित और निश्चिन्त प्रकृति का ही परिणाम होता है कि कई बातों में नाहक chief college की गन्ध प्रतीत होने लगती है। सम्भव असम्भव इस भूत के दीख पड़ने के अनेक कारणों में से एक यह भी हो सकता है। खैर हम मान लेते हैं कि हमारे जीवन में कुछ एक ऐसी बातें आगई हैं कि जो chief college की समझी जाती हैं और कुछ एक व्यक्तियों की तपस्या की भावना के प्रतिकूल हैं, पर इस में दोष किसका है? उस के क्या कारण हैं? हमारी सम्मति में तो वर्तमान गुरुकुल का सम्पूर्ण संस्थान इसका बड़ा भारी कारण है गुरुकुल का आश्रम जीवन हम को संसार की वास्तविकताओं से कोसों दूर रखता है। हमारे चारों ओर कृत्रिम वातावरण पैदा किया हुआ है जैसा कि किन्हीं पौधों के विशेष विकास के लिए किया जाता है। हम को जहां तक हो सके संसार के शोर और चिन्ताओं से दूर जङ्गल में रखने का प्रयत्न किया जाता है। और डङ्के की चोट पानी के गिलास पी पी कर गुरुकुल की इस विशेषता को यत्र तत्र उद्घोषित किया जाता है पर इसका यहां शिक्षा पाने वालों

के मन पर क्या असर पड़ता है? इस बी-
सवीं सदी में सम्पूर्ण वायुमण्डल को बदल
डालना तो किसी के वश की बात नहीं
है। क्रियात्मक रूप में इतना ही होता है कि
हम संसार की प्रत्येक चिन्ता और जि-
म्मेवारी से बरी हैं पर काम हमारा
पढ़ना खाना और खेलना है इस पर
भी सामूहिक जीवन नहीं जो कि एक
प्रकार का नशा है। इस अवस्था का स्वा-
भाविक परिणाम वही है जिसे अब
लोग chief college को और शाहाना कहने
लगगए हैं। हमें आज किस बात की
चिन्ता है? न घर की न बाहिर की।
न खाने की न पीने की बड़े से बड़े
व्यक्ति और अधिकारी की भी हम अपने
मार्ग पर चलते हुए उपेक्षा कर सकते
हैं। हमारी सारी जिम्मेवारी औरों के
सिर पर है। हमारे पास नौकर हैं-साथी
हैं- संरक्षक हैं और पथ प्रदर्शक हैं।
फिर यदि यह chief college की प्रवृत्ति
यों पैदा हो भी जाए तो इस में आश्चर्य
की कौन बात है इसके सिवाय वर्त-
मान युग में गुरुकुल का अर्थ-विशेष
कर वर्तमान गुरुकुल का अर्थ- ही क्या
है। यह तो बनाया ही chief college
गया है। आज इस बात को कौन अनुभ-
व नहीं करता कि हमारी अधिकांश
शिक्षा वर्तमान सांसारिक दृष्टि से
निकम्मी और निरुपयोगी है। कहा
जाता है कि गुरुकुल आर्थिक गुत्थियों
को सुलझाने के लिए नहीं खोला गया।
क्या इसी के अर्थ नहीं है कि गुरुकुल
के संचालक गूढ़ अभिप्राय से वा
अप्रत्यक्ष रूप से स्वयं इसे chief
college बना रहे हैं। ऐसे गुरुकुल तो त-
भी चल सकते हैं जबकि समाज का
संगठन अधिक जटिल और विषम न हो
खाने पीने की पर्याप्त हो फिर राजा का
आश्रय हो। यही प्राचीन काल में होता था।
जब गुरुकुल धन कमाने के लिए नहीं है
तो एक प्रकार से यही आशा करनी
चाहिए कि वहां पर वे ही माता पिता अप-
नी सन्तान को प्रविष्ट करें जो कि अच्छी
स्थिति में हो और जिनको इस बात की
चिन्ता न हो कि वह लिख कर बेटा जी
कुछ कमाएंगे भी या नहीं। स्नातकों का
आदर्श एक ही हो- उपदेश की और निश्काम
सेवा। क्या इसका सीधा सादा अभिप्राय
नहीं है कि गुरुकुल chief के लिए है
यदि इसमें और साधारण बालक भी आते
हैं तो इसका कारण उनके माता पिता का
अज्ञान वा भोलापन है जो कि जितनी
जल्दी ही दूर हो जाए उतना ही अच्छा है। इस
प्रकार स्पष्ट है कि इस बीसवीं सदी में
तो प्राचीन आदर्शों के साथ गुरुकुल
chief college ही हो सकता है यदि
आज गुरुकुल कुछ असफल नजर आते
हैं तो इसलिए कि वास्तव में इस का
स्थान तो chief college का है पर
समझा इससे विपरीत जाता है। चाहे
विद्यार्थी नंगे सिर और नंगे पैर रहें और
कितनी ही प्रकार की तपस्या न क्यों न
करें पर इससे यह आधारभूत दोष नष्ट
नहीं हो सकता। हमारा chief college
का विचार ही मिथ्या है। आखिर वहां
भी तो कुछ न कुछ तपस्या और कठोर
जीवन का अनिवार्य रूप से अभ्यास
कराया जाता है। इसलिए यदि किसी को

गुरुकुल chief college बनता नजर आता है तो उसे इस आधार भूत भ्रांति को दूर करना पड़ेगा। गुरुशिष्य का स्वच्छ हो सकता है आचार विचार की देखरेख भी की जा सकती है परन्तु इस कृत्रिम वातावरण को हटाना पड़ेगा जिसमें कि हम पल रहे हैं और जो कि जनता को धोखे में डालने वाला है। आज सारा गुरुकुल वर्तन तो क्या यदि स्वयं वस्त्र और शौच भी साफ करने लग जाए तो भी यह बुराई दूर नहीं की जा सकती इस बीसवीं सदी में गुरुकुल तो अपने आप में एक बड़ी भारी Luxury है और जनता तथा संस्थाओं के धन पर एक सफेद हाथी पल रहा है। यदि जरा गम्भीर दृष्टि से विचारा जाए तो इस में रत्ती भर भी अतिशयोक्ति नहीं प्रतीत होगी।

इसके अतिरिक्त हमारे चारों ओर का वातावरण और स्थिति भी इसमें बड़ी मदद करती है। आलीशान महल हैं, मेज़ कुर्सियाँ हैं सुन्दर २ अलमारियाँ और खूंटियां हैं खेलने के मैदान हैं, स्नानगृह हैं, खान पान सम्पन्न सामग्री भण्डार है, दफ्तर हैं बालवाटिका औषधालय हैं, नौका और Jumping stage है। दूर से देखो तो सड़कें चमकीली सी नज़र आती हैं। उपाध्याय हैं और खूब शानदार उपाध्याय हैं साइकलें मोटरें और मोटर साइकलें दिन रात इर्द गिर्द चक्कर काटती हैं। बाकायदा धोबी, भङ्गी नाई आदि नौकर विद्यमान हैं। इन सब बातों का अपना प्रभाव होता है जो कि अज्ञात रूप से मनुष्य के जीवन पर पड़ता रहता है। इस अवस्था में हो सकता है कि विद्यार्थी नियम के भय से बेकॉलर और बेक्रीज़ का सीधा सादा कुर्ता पहनले पर उपरोक्त बातों का उसके जीवन पर बिलकुल असर न पड़े। यह एक बड़ी भारी निराशा और दुराशा है। इसके अतिरिक्त एक और बात है जिसकी ओर कि हम थोड़ा सा ध्यान आकर्षित कर देना चाहते हैं। यह शुल्क की समस्या है। आज संसार में आर्थिक विचार सब से अधिक प्रभाव रखते हैं। जनता के दान के अतिरिक्त प्रत्येक महाविद्यालय के विद्यार्थी से २५) मासिक लेना विशेष कर वर्तमान मन्दी के दिनों में सम्भव है किसी की दृष्टि में स्वयं एक chief college की बात हो। इतना व्यय करने वाला कोई भी विद्यार्थी हिसाब मांगने का हक रखता है। और सोच सकता है कि उसके धन का उपयोग इस प्रकार से हो कि वह अधिक तम आनन्द और आराम प्राप्त कर सके। हो सकता है कि आर्थिक दृष्टि से स्वयं अपने बर्तन कपड़े आदि साफ करना कई भाइयों को जल्दी समझ आजाए जैसा कि आजकल देखा भी जाता है परन्तु उनके धन का व्यय तो पूर्ववत ही हो और आशा इस के विपरीत की जाए सो सम्भव तो है पर ज़रा कठिन अवश्य है॥ इस धन का व्यय किस प्रकार हो और नियत धनराशि की मात्रा कम कर दी जाए इन सब बातों पर तो हम फिर कभी विचार करेंगे परन्तु इतना हम स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि जब तक धन की व्यवस्था वर्तमान बजट आदि के रूप में रहेगी तब तक यदि गुरुकुल chief college है तो इस बात का हटाना असम्भव है। चाहे सारा गुरुकुल सब काम अपने हाथ से करने लग जाए इस chief college की त

और हमारा शुल्क २५) की जगह १५) मासिक क्यों न कर दिया जाए इस chief-college की तबीयत को हरना कठिन है। जब विद्यार्थियों के सिर पर कोई बोझ नहीं है चिन्ता नहीं है तब ऐसी प्रवृत्तियों का पैदा होजाना आश्चर्यजनक न होना चाहिए दूसरा common-life इसका एक बड़ा भारी कारण है यदि यह बुराई है तो इसका इलाज वास्तव में एक है और उसके लिए हमारी सम्मति में गुरुकुल की धन सम्बन्धी व्यवस्था में आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता है विद्यार्थियों के हाथमें उनका धन देना होगा ताकि वे अपने घरों से तथा बाहिर की दुनियां से भी परिचित हो सकें होसकता है कि उस समय chief college की शिकायत कुछ कम हो जाए। कई एक गुरुकुल जगत के विचारक इस ओर झुक रहे हैं। पर यह एक महान परिवर्तन होगा जिसके लिए अभी से जितनी अधिक चेतावनी दे दी जाए उतना ही अच्छा है प्रत्येक परिवर्तन प्रारम्भ में स्वर्गीय लगता है और भला जचता है और पीछे से उसके दोष भी प्रगट हो जाते हैं। हमारी सम्मति में परिवर्तन न करना अधिक श्रेयस्कर है अपेक्षा पीछे पछताने के। यह तो हम निश्चय से कह देना चाहते हैं कि धरोहर सिस्टम के बाद का गुरुकुल आज सा न रहेगा। हमारे सामूहिक जीवन में अनेक दीवारें और बाधाएं आकर खड़ी हो सकती हैं उस के कितु की ओर एकान्तता में तो निश्चित भङ्ग आ जाएगा जिसे कि अब तक गुरुकुल की विशेषता समझा जाता रहा है और आज जिसे chief college की बात समझा जारहा है। जरा सोच कर देखिए धरोहर System के बाद हमारे आश्रम जीवन की क्या विशेषता रहेगी। आज यहां पर जो कुल बन्धुत्व की सामान्य भावना काम कर रही है वह कहां तक कायम रह सकेगी। ये कुछ बातें हैं जिन्हें हमें धरोहर System की ओर चलाना होगा। हो सकता है कि किन्हीं के मत में यह ठीक हो और किन्हीं के मत में बुरा हो पर इतना हम ~~चाहते~~ जानते हैं कि इन सब पर विचार करके ही उठाया गया कदम हमारे लिए और सम्पूर्ण कुल के लिए अवश्य हितकर होगा। शुल्क आदि के विषय में तो हम विस्तार से फिर कभी लिखेंगे। पर इन सब परिवर्तनों से पूर्व प्रारम्भिक विचार के रूप में अपना कुछ वक्तव्य हमने पाठकों के सामने रखना आवश्यक समझा है।

सम्पादकीय

दूसरा महाभारत युद्ध

एकबार कभी कौरवों और पाण्डवों का महाभारत युद्ध हुआ था पर आज-कल निःसन्देह भारतवर्ष में अपने ढंग का एक दूसरा महाभारत चल रहा है। भाई भाई की गर्दन पर छुरी चलाते जरा संकोच नहीं करता। यह हिन्दु-मुस्लिम दंगा है। विचित्रता यह है कि जब से भारतवर्ष में राष्ट्रीयता की लहर उठी है तभी से दूसरे महाभारत का भी प्रारम्भ नजर आता है। उससे पूर्व इसका यह स्वरूप न था। पता नहीं इसका क्या कारण है। सम्भव है कि [illegible] स्वाभ से ही घटनाक्रम इस प्रकार का हो गया हो। परन्तु हिन्दु-मुस्लिम दंगा एक ऐतिहासिक सत्य बन गया है जिससे किसी को इन्कार नहीं हो सकता। इससे बढ़ कर अधिक आश्चर्य और अफसोस की बात क्या हो सकती है कि एक तरफ तो सम्पूर्ण राष्ट्र अपनी जान को हथेली पर रख कर सिर से कफन बांधे संसार की सबसे बड़ी ताकत से टक्कर ले रहा है और दूसरी ओर बम्बई में उसी राष्ट्र के निवासी आपस में एक दूसरे के खून के प्यासे हो रहे हैं। हमारे वर्तमान स्वाधीनता संग्राम को इन घटनाओं से कितना भारी धक्का लगता है और लग रहा है इसका कोई भी समझदार व्यक्ति अन्दाज लगा सकता है। जो युद्ध-क्षेत्र में उतरे हुये हैं और जिनके लिये आवश्यक है कि वे अन्य सब चिन्ताओं को ताक पर धर कर इसी ओर अपने ध्यान को एकाग्र करें-उनको भी कुछ समय के लिये अपना काम छोड़ कर इसी ओर ध्यान लगाना पड़ता है। आखिर आपस की लड़ाई भी तो उपेक्षा भाव से नहीं देखी जा सकती। बम्बई के आन्दोलन को इससे कितनी क्षति हुई होगी उसको हम यहां बैठे कल्पना नहीं कर सकते। जो स्वयंसेवक दल तक पिकेटिंग और अन्य काम करते थे आज उन को दंगे के परिणाम स्वरूप घात और असहाय व्यक्तियों की मदद करनी पड़ रही होगी। कां-

जेल कार्यकर्ताओं को अपनी पूरी
ताकत दंगों की शान्ति में लगानी
पड़ी होगी। बम्बई उन चुनिन्दा
स्थलों में से था जहाँ कि सत्याग्रह-
आन्दोलन बड़ी शान्ति और सफलता
से चल रहा था। वहाँ पर सरकार
ने जो कुछ भी ज्यादती की है उसका खुलासा
तो पार्लियामेन्ट के भवन में भी
हो चुका है। सरकार बम्बई में अ-
पने पाप. प्रत्येक उपाय को आजमा
कर देख चुकी थी। यही पर अ-
न्तिम उपाय तो नहीं है जिसको
पहले भी सरकार कई बार अपने
एजण्टों द्वारा काम में ला चुकी है।
इस विषय में Bombay Chronicle
द्वारा बम्बई-सरकार और पुलिस
पर किये गये आक्षेप विचारणीय
हैं। यद्यपि मौलाना शौकत अली
साहिब यही फर्माते हैं कि मैं "ब-
म्बई की गलियों में इसलिये घूम रहा
हूँ ताकि उत्तेजित मुसलमान नवयु-
वकों को शान्त कर सकूँ" पर इस
दंगे के भीषणता के कारणों पर प्रका-
श डालते हुये हमारे विशेष सम्वाद-
दाता ने एक कारण मौलाना साहिब
का इतने दिनों से बम्बई में होना
भी बताया है। हिन्दु-मुसलमान
दोनों को ऐसे आदमियों का ध्यान
रखना चाहिये क्योंकि इन फि-
सादों से दोनों को ही नुकसान हो-
ता है। इस दंगे के कारण न जाने
बम्बई के नागरिकों को कितनी
क्षति उठानी पड़ी होगी। सैंकड़ों
मर गए हैं और हजारों घायल
हो गये हैं। सारे शहर का कारो-
बार रुका पड़ा है। गुण्डों की बन
आई है। हिन्दु हिन्दु की दुकान
लूट लेते हैं और मुसलमान मु-
सलमान की। अतः हमारी इच्छा
है कि जितनी जल्दी इस आग
को शान्त किया जाय अच्छा है।
ये घटनायें भारतवर्ष के माथे
पर भयङ्कर कलंक हैं और स्वा-
धीनता प्राप्ति में बाधक हैं। एक
जरा से मुहर्रम के चन्दे की बात
पर इतना खून बहाना क्या मान-
वीयता है? क्या कोई भी धर्म
इसकी आज्ञा देता है? इस महा-
भारत-युद्ध को जितनी जल्दी स-
माप्त किया जायगा उतना ही अच्छा
होगा। हम आशा करते हैं कि
बम्बई की जनता इस ओर ध्यान
देगी और सुलह समिति को त-
था अन्य सार्वजनिक धार्मिक-

तियों को शान्ति स्थापन में सहयोग देगी। अन्त में हम सरकार को भी चेतावनी देना चाहते हैं कि जहाँ वह सत्याग्रह-आन्दोलन के दबाने में इतनी फुर्ती और सरगर्मी दिखाती है वहाँ ऐसे अवसरों पर सुस्ती और ढील दिखाना अपनी डूबती नौका में एक छिद्र और कर देना होगा।

शान्ति के प्रयत्न में अशान्ति

एक विचारक ने संसार के आन्दोलन और विक्षोभ को देखकर अपने विचार प्रकट करते समय कहा था कि यह मनुष्य ही है — जीव ही हैं — जो कि जड़ और शान्त प्रकृति को अपने स्वार्थ से अशान्त और विक्षुब्ध कर देता है। इसका कुछ आभास पाठक आज काश्मीर की घाटियों में दृष्टिगोचर कर सकते हैं। जहाँ कितनी प्राकृतिक शान्ति और सौम्यता विराजती है, संसार के गिने चुने रम्य और शान्तिप्रद स्थलों में काश्मीर का नाम है। जिनको कभी वहाँ जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वे जानते हैं कि वहाँ के निवासियों पर भी इस प्राकृतिक शान्ति का कितना असर है। एक मुसलमान भी 'हातो' की सूरत से अतीव भोलापन और अटूट राजभक्ति टपकती है। परन्तु आज एक वर्ष से अधिक हो गया कि लोगों ने काश्मीर के राजा और सरकार की नाक में दम कर दिया है। आज के राजा अपनी साधारण मानसिक अवस्था से ऊपर तो उठ नहीं सकते, पर फिर भी काश्मीर के राजा ने प्रजा शान्ति के सब उपायों का प्रयोग करके देखा है। उस बेचारे को बाहिर से भी मदद लेनी पड़ी और फिर अन्त में ग्लेन्सी नामक एक कमीशन भी कुछ विशेष बातों पर विचार करने के लिये बिठाना पड़ा। उस कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हो चुकी है और राजा साहिब उन की सिफारिशों को जहाँ तक और जैसे हो सके जल्दी कार्यरूप में परिणत करने का प्रयत्न कर रहे हैं। यहाँ हम गतवर्ष मुसलमानों द्वारा चलाये गये आन्दोलन

ऐसा प्रतीत होता है कि रियासत को हिन्दुओं से विशेष भय नहीं है अतः चिन्तापूर्वक उनकी आवाज को सुनना भी आवश्यक नहीं समझा गया है। पर क्या राजा इस अशान्ति को अभी और कायम रखना चाहते हैं। यूँ तो हम सरकारी क्या सम्पूर्ण ही रियासतों के विरुद्ध हैं और उनका खात्मा नहीं तो कम से कम उनमें मौलिक सुधार अवश्य चाहते हैं। पर इस प्रकार एक के भय से दूसरे को क्षति पहुँचाने वाले सुधारों के हम कदापि पक्षपाती नहीं हैं, हम आशा करते हैं कि एक हिन्दू रियासत में जहाँ मुसलमानों की सन्तुष्टि का प्रयत्न किया जा रहा है वहाँ हिन्दुओं की न्याय्य माँगों तथा हितों की भी उपेक्षा न की जायगी।

"जहां कच्चा हूँ वहां पक्का भी हूँ"

भारत सरकार सीमाप्रान्त को भी एक पृथक् गवर्नर का प्रान्त बनाने का सोच रही थी, पर उसको इसका अब तक कोई उपाय नहीं सूझता था। यह भारत सरकार की सफाई है। पर खुदा की मिहरबानी से अब कोई उपाय सूझ गया है, और सम्राट की सदिच्छाओं के साथ बड़ी शान शौकत से वायसराय साहिब ने सीमाप्रान्त को सुधार दे दिये हैं और गवर्नर का प्रान्त उद्घोषित कर दिया है। किसी को अपने घर का स्वयं प्रबन्ध करने का जितना अधिक अधिकार मिले उतना ही अच्छा है। इस पर हमें क्या अप्रसन्नता न हो सकता है। हाँ, किसी भले काम में भी भारत सरकार की नेकनीयती में शुबह करने के हमारे पास पर्याप्त और सबल सबूत हैं। भारत सरकार और उसके पृष्ठपोषक चाहे कितना ही क्यों न कहें पर हम एक क्षण के लिये भी यह स्वीकार करने को उद्यत नहीं हैं कि भारत सरकार तो बहुत पहले से चाहती थी कि सीमाप्रान्त को पृथक् गवर्नर का प्रान्त बना दे पर उसे कोई उपाय ही नहीं सूझता था और कि अब किसी दैवी

चमत्कार से प्रकट गया है, इस चा-
मत्कारिक ढंग का स्थायी कारण ह-
म तो यही दे सकते हैं कि जहाँ इच्छा
होती है वहाँ उपाय भी निकल आ-
ता है चाहे वह इच्छा नेक हो या
बाधित होकर करनी पड़ी हो। जो
समस्यायें और बाधायें सीमाप्रान्त
को सुधार देने से पहले थीं वे अब
भी वैसी की वैसी हैं। सीमाप्रान्त के
पठान इस थोड़े अरसे में कोई बड़े
"constitutionalist" और शिक्षि-
त व उन्नत नहीं हो गये हैं। यदि
सीमाप्रान्त से किसी विदेशी शक्ति के
आक्रमण की आशंका थी तो वह अब
कम नहीं हो गयी है। अल्पसंख्य-
कों की रक्षा की समस्या का कोई वि-
शेष हल नहीं निकाल लिया गया है,
यदि आर्थिक दृष्टि से सीमाप्रान्त
को पृथक् प्रान्त बनाना कठिन था तो
अब वहाँ कोई सोने और चांदी की खा-
नें नहीं निकल आई हैं। अब भी
केन्द्रीय सरकार को उसे एक करोड़
रुपये की सालाना मदद देनी होगी,
जब कि केन्द्रीय सरकार स्वयं तंग है,

इन अवस्थाओं में अपना रवैया
बदलकर सुधार देने का अभिप्राय
है कि सरकार को इसके लिये बा-
धित होना पड़ा है। ब्रिटिश कौम
अपने स्वार्थों की खातिर उपेक्षा क-
रके केवल परार्थ के इच्छापूर्वक किसी
का भला करे सो तो उसके सम्पूर्ण इ-
तिहास के विरुद्ध है। वास्तव में
सीमाप्रान्त के case में भी भारत
सरकार को बाधित होना पड़ा है। वहाँ
जिस तेजी से असन्तोष फैल रहा था
और दृढ़ता तथा धैर्य से सुधार-प्रा-
प्ति तथा स्वाधीनता के लिये आन्दो-
लन चल रहा था उसने सरकार के
कुछ होश ठीक कर दिये हैं और
पुरते टिकवा दिये हैं। Times पत्र
के मत को हम अपने शब्दों में यूं
कह सकते हैं कि राजनीतिक असन्-
तोष ने सरकार को बाधित कर दि-
या है कि वह सीमाप्रान्त को भी सु-
धार दे और उसे अन्य प्रान्तों की
पंक्ति में खड़ा कर दे। सरकार को यह
समझ आ अवश्य गई पर कुछ देर
में आई कि इतने थोड़े समय में भी

अब्दुलगफ्फार खां पठानों जैसे उद्दण्ड आदमियों से आश्चर्यजनक संगठन कैसे कर सका और लाख से अधिक का एक कवायदी लालकुर्ती दल बना सका हो इसका एक बड़ा कारण सरकार की अपनी शर्ते हैं। हम भी चाहते हैं कि इसी तरह सही। ऐसी ही कुछ शर्ते भारतवर्ष को ब्रिटिश साम्राज्य के मुकुट से अलग कर देंगी। हम तो इन शर्तों का भी स्वागत कर सकते हैं। अब तो कुछ ऐसी ही अधिकता हो गयी है, यद्यपि हम जानते हैं कि अभी काफी समय तक सीमाप्रान्त केन्द्रीय सरकार के रहमो करम पर आश्रित रहेगा पर फिर भी हम चाहते हैं कि वहाँ के निवासी भी यथासम्भव औरों की बराबरी पर अपने अधिकारों का प्रयोग कर सकें और शेष भारत की उन्नति के साथ २ चल सकें। सीमाप्रान्त अपनी योग्यता का प्रकाश कहाँ तक करता है यह तो भविष्य बतायेगा। पर हम आशा अवश्य करते हैं कि एक दूसरे के हितों की रक्षा करता हुआ सीमाप्रान्त अन्त को प्राप्त अधिकारों से भी अधिक का हकदार सिद्ध करेगा। यदि सुधार भली भांति न चलाये गये तो मान्टेगू चेम्सफोर्ड-सुधारों जैसा ही हाल होगा। हमें इस बात का खेद अवश्य है कि यद्यपि इस अवसर पर सरकार ने बड़ी शान और शौकत दिखाई है पर कोई अवसरोचित कार्य नहीं किया। जहाँ सीमाप्रान्त में भाषण और लेखन व प्रेस के अधिकारों को बुरी तरह कुचला गया, तीन २ विशेष आर्डिनेन्स केवल सीमाप्रान्त के लिये लगाये गये, लाठियों और बन्दूकों से काम लिया गया और अब्दुलगफ्फार खाँ तथा अन्य मान्य नेताओं को अनिश्चित काल के लिये दूर जेलों में नजरबन्द कर दिया गया, इस शुभ कृत्य के उपलक्ष में १०० से १२५ कैदियों का रिहा कर देना तथा एक जिले के लिये Frontier Crimes Regulation Act का स्थगित कर देना कोई चीज नहीं है। शायद इसी डर से बचने के लिये

वायसराय साहिब ने अपने भाषण में लोगों को उल्लू बनाने के लिये एक बड़ा सुन्दर मुहाविरा प्रयोग किया था कि "कि हम धीरे २ जल्दी कर रहे हैं" (hastening slowly), Frontier crimes Regulation Act तो उन Acts में से है जिनका एक दम [illegible] नाश कर देना चाहिये। जब सीमा प्रान्त की जनता के नेता जेल की सींखचों में बन्द हैं उस समय ऐसे काम करना सरकार की ओर से पठान जनता की अज्ञानता और भोलेपन का नाजायज़ फ़ायदा उठाना है। अन्त में हम आशा करते हैं कि सीमाप्रान्त को शीघ्र से शीघ्र स्वावलम्बी बनाने का भरपूर प्रयत्न किया जायगा और प्रधानमन्त्री तथा वायसराय के भाषणों के अनुसार प्रान्त का बहुमत और सरकार और सरकार अल्प संख्या की रक्षा की ओर उचित ध्यान देगी। इतना और कह देना चाहते हैं कि हमारी सरकार इस बात को कब समझेगी कि आधे तौर पर सुधार देना कोई इलाज नहीं है।

घर में मान नहीं तो दुनियां में भी मान नहीं

कुछ दिन हुये समाचार आया था कि दक्षिणी अफ्रीका में रहने वाले चीन के कौंसल ने कहा है कि Asiatic Land Tenure Bill चीनियों पर लागू न हो। इस समाचार को पढ़ कर हमारे मन में आया कि क्या यह Bill वास्तव में केवल भारतीयों के लिये तो न रह जायगा? पर आज भारतीयों की ओर से कौन कहे। भारतीय राष्ट्र तो स्वयं असहाय और पंगु पड़ा है तथा अपनी आजादी के लिये छटपटा रहा है। किसी गैर को क्या गरज पड़ी है कि वह हमारी मदद करे और हमदर्दी का इज़हार करे। जिन भारतीयों का अपने भारतवर्ष में एक इंच ज़मीन पर भी पूरा अधिकार नहीं है वे विदेशस्थ भाइयों के अधिकारों की सुरक्षा के लिये सिवाय शाब्दिक सहानुभूति और आह भरने के क्या करें। जब अपने घर में लाठियाँ, गोलियाँ और इससे भी अधिक

पाशविक व्यवहार सहने पड़ते हैं तो समुद्रों के पार बैठे भाइयों के अपमान का क्या प्रतीकार किया जाए। हमें तो दीनबन्धु ऐण्ड्रूज़ के शब्दों की याद याद आती है कि "विदेशों में गये भारतीय मजदूरों के हितों और मान-मर्यादा की रक्षा भारत सरकार तथा उसके द्वारा नियुक्त एजण्टों पर आश्रित हैं" तो अपनी बेबसी को देख कर आंखें छलछला आती हैं और रोष से दिल तिलमिला उठता है। भारत सरकार! ब्रिटिश गायना में सार्वजनिक मताधिकार के विषय में भारत सरकार द्वारा की गई देर क्या हम इतनी जल्दी भुला सकते हैं? १९२८-२९ में West Indies से वापिस आते हुये अनेक repatriates सतलज जहाज पर मर गये थे। दो साल बाद जाकर भारत सरकार ने कुछ सलाह इस सम्बन्ध में दी जिसे कि ब्रिटिश गायना की सरकार ने अब नहीं स्वीकार किया है। यह सलाह प्रारम्भ में दब जाती तो शायद सर्वशक्तिमान परमात्मा भी न जानते होंगे। Transvaal British Indian Association भारतीय सरकार से प्रार्थना करता रह गया कि वह Asiatic Land Tenure Bill को हटाने के लिये ज़रा सख्त रवैय्या अख्तियार करे पर यहाँ किसी के कान पर जूं तक भी नहीं रेंगी। इस बिल के अनुसार किसी भी भारतीय को और यहाँ तक कि भारत सरकार के एजण्ट तक को भी ट्रान्सवाल में नागरिक रूप से बसने, ज़मीन खरीदने और भूमिपति बनने का अधिकार नहीं है। हमारे हितों की रक्षा के लिये जब भारत सरकार ही इतनी उदासीन है तो और देश हमारे क्या सोच सकते हैं जो हमारी चिन्ता करें। अभी हाल में केपटाउन समझौता हुआ है। हमारी सम्मति में यह समझौता अत्यन्त त्रुटिपूर्ण है, परन्तु वह जो भी कुछ है महात्मा एण्ड्रूज़ के शब्दों में उसकी रक्षा भी भारत सरकार तथा उसके एजण्ट पर आश्रित है जिसके विषय में हमें अन्त में निराश ही होना पड़ेगा। हमें यहाँ केपटाउन समझौते के विषय में अधिक नहीं लिखना है।

समझने के लिये मैं बस एक बात की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। १९२६ के सम्मेलन के निर्णयानुसार केपटाउन का सम्मेलन हुआ था। १९२६ में भारतीयों को दक्षिण अफ्रीका की स्थिर आबादी मान लिया गया था परन्तु एक शर्त यह लगा दी गई थी कि जो पाश्चात्य ढंग से अपने जीवन को न बिता सकेंगे उनको यदि आवश्यक हो तो कुछ सहायता भी देकर भारतवर्ष को वापिस कर दिया जायगा व अन्यत्र कहीं भेज दिया जायगा। दस हजार से भी अधिक भारतीय वापिस भारतवर्ष आये पर वे पीढ़ियों से विदेश में रहने के कारण पुनः अपने को यहाँ की परिस्थितियों के अनुकूल बना सके और इसके अतिरिक्त यहाँ जीविका के साधन जुटाने में भी उनको बड़ी कठिनाई हुई क्योंकि यहाँ तो पहिले ही बेरोजगारी की समस्या भयंकर रूप धारण कर रही है। अतः भारतवर्ष वापिस भेजने का विचार छोड़ दिया गया और सोचा गया कि इन भारतीयों के लिये एक नया उपनिवेश ढूंढ निकालने की कोशिश की जाय। इसके लिये ब्राजील का नाम लिया जा रहा है। भारतीय यदि किसी और उपनिवेश में जाकर बस जावें तो यह अपने में कोई बुराई नहीं है। ब्राजील में रंग का भेद भी इतना तीव्र नहीं है और जलवायु भी अच्छा है। आबादी भी ०.४ प्रति वर्ग मील है। जापानी वहाँ धड़ाधड़ बस रहे हैं। पर हमारी शिकायत तो यह है कि भारतीयों को इस प्रकार यूरोपियनस की चाल का शिकार बनाया जा रहा है। वे हमको रंग की दृष्टि से देखते हैं और मताधिकार आदि देना नहीं चाहते अतः ऐसी चाल का आश्रय लिया जा रहा है कि अपना उल्लू भी सीधा हो जाय और आटे को घुन भी न लगे, साँप भी मर जाय और लाठी भी न टूटे। हमारी सरकार चाहे इसे अपमान न समझे और नहीं समझना चाहे पर हम इस सच्चाई से आँख नहीं फेर सकते। गांधी जी ने एक बार चेतावनी देते हुये लिखा था कि " It is decidedly a disadvantage

to have been a party to assisted emigration to any other part of the world" अफ्रीका में यूरोपियन्स भी उतने ही विदेशी हैं जितने कि भारतीय। भारतीयों को भी नागरिक अधि-कार होने चाहिये। उनमें ८०% से अधिक वहीं पैदा हुए हैं जैसा कि १९२६ और १९३२ के समझौतों में भी माना गया है। परन्तु स्थि-ति इससे विपरीत है। श्री एन्ड्रूज ने अभी हाल में अपने एक बयान में कहा था कि वहाँ अब भी स-मानता का व्यवहार नहीं है और रंग का भेद किया जाता है। हमारी सम्मति में Asiatic Land Tenure Bill जैसी बातें एक क्षण के लिये भी न रहनी चाहियें। हम आशा करते हैं इन विषयों में भारतीय जनता किसी भी अपमान जनक समझौ-ते को स्वीकार न करेगी।

सरकार दुविधा में

यद्यपि ८ महीने बराबर हैं ह, प्रतीत है पर हमारे पाठकों को आ-श्चर्य होगा कि वर्तमान सत्याग्रह आन्दोलन के लिये आर्डिनेन्सों के ६ महीने गत आन्दोलन के ६ महीनों की अपेक्षा कठोर सिद्ध हो रहे हैं। पिछली बार आर्डिनेन्स कुछ ठहर कर लगाये गये थे अतः आ-न्दोलन की दृष्टि से वे अधिक देर तक चले थे पर इस बार तो विलिंगडन साहिब का ख्याल था कि वे प्रारम्भ में ही आर्डिनेन्स लगाकर आन्दो-लन को ठप कर देंगे। पर राज-नीतिक दृष्टि से यह उनकी गलती थी और अब उनको तोर नजर आ रहे हैं। उन्होंने सब कुछ कर लिया पर आन्दोलन को दबा नहीं पाया और बावजूद इतने आर्डिनेन्सों के वही हालत है। फिर आर्डिनेन्स भी थोड़े दिनों के और मेहमान हैं क्योंकि सबकी अवधि समा-प्त होने वाली है। सरकारी और राजनीतिक हलकों में इसकी बड़ी चर्चा है कि अब क्या किया जायगा, अनेक राजनीतिज्ञों के दिमाग इस समस्या पर विचार कर रहे हैं। यही कारण है कि पाठक समाचार पत्रों

वे कभी तो कहते हैं कि सरकार इन आर्डिनेन्सों को पुनः जारी करेगी, कभी कहते हैं कि व्यवस्थापिका सभा का विशेषाधिवेशन न बुला कर इस आशय का एक 'शासन संरक्षण कानून' बनवाया जायगा और कभी कहते हैं कि दो मास के लिये सरकार कुछ न करेगी और कांग्रेस की गति विधि को देख कर अपनी बात का निश्चय करेगी। यूँ तो अपनी मर्जी की मालिक श्रीमती सरकार इनमें से जो चाहे सब कर सकती है और इससे भी अधिक बहुत कुछ कर सकती है परन्तु अपने को बिना बात भला कहलवाने बदमाश को भी कभी २ किसी काम में संकोच करना पड़ता है। यूँ तो भारत सरकार जब चाहती है तब कानून को ताक पर धर देती है पर हमारी सम्मति में आर्डिनेन्सों के बारे में सरकार के हाथ कानून से बंधे हुये हैं; विद्यमान आर्डिनेन्सों को पुनः जारी करना व इस आशय के नये आर्डिनेन्स गढ़ना तो गवर्न्मेन्ट कानून के वाक्य और भावों के सर्वथा विपरीत है, और अवैध है। Statute में स्पष्ट कर दिया गया है कि गवर्नर जेनरल को बहुत ही आवश्यकता पड़ने पर विशेष अवसरों के लिये केवल ६ मास के लिये आर्डिनेन्स जारी करने का ही अधिकार है जब कि देश के साधारण कानूनों से काम न चलता हो। इससे आर्डिनेन्सों का भाव भी स्पष्ट है अर्थात् पार्लमेन्ट कोई प्रबन्ध कर देती। इन आर्डिनेन्सों को स्वेच्छा से किसी भी प्रकार नियत अवधि से अधिक जारी रखना जानबूझ कर emergency power का दुरुपयोग करना होगा। यदि व्यवस्थापिका सभा का विशेषाधिवेशन बुला कर कानून बनवाने का विचार

हैं तो यह ध्यान रखना चा-
हिये कि यहाँ कोई बिल पास
ही हो जाय तो निश्चित न
नहीं है चाहे उस सभा का सं-
गठन इसके कितना ही अनुकूल
क्यों न हो। यदि वहाँ बिल
फेल हो जाय तो एक ही चारा
होगा कि वायसराय सार्टिफ
उसको अपने अधिकार से का-
नून बना दे। परन्तु यह एक बड़ी
भारी अवैध और अनुचित का-
र्रवाई होगी। यदि statute
के भाव को दृष्टि में रख कर
विचार किया जाय तो वायस-
राय को ऐसा करने का अ-
धिकार ही नहीं रहता। नहीं
इसके लिये पार्लियामेन्ट ने कोई
प्रबन्ध किया है। जब वायस-
राय को आर्डिनेन्सों के अवधि
के अधिक जारी रखने का अधि-
कार नहीं है और व्यवस्थापिका
सभा उसको कानून का रूप देने
के पक्ष में नहीं है तब फिर वा-
यसराय का उसको विशेषाधि-
कार से कानून बनाना कहाँ तक
संगत है और संसार के किस
शासन विधान के अनुसार है।
यूँ तो गैर-जिम्मेवार भारत सर-
कार को कार्यरूप में सब अन्धे
रे अधिकार प्राप्त हैं पर फिर
भी इतना तो स्पष्ट है कि इस
बार कुत्ते (१) ने भौंकने से
हाथी (१) को रोक लिया है
और सरकार को दुविधा का
सामना करना पड़ता है, इसी
लिये होर साहिब भी अब ऐसे
उत्तर देने लग गये हैं कि हम
पहले कौंग्रेस की नीति को देखेंगे
और फिर अपनी नीति निश्चित
करेंगे, यह बिलकुल स्पष्ट है।

कांग्रेस की नीति तो बड़ी स्वच्छ और सीधीसादी है। उसने तो देश की आजादी प्राप्त करनी है, सरकार से जो बन पड़े सो करे। हमारी सम्मति में वर्तमान प्रपञ्चों से मुक्ति पाने का उपाय न तो आर्डिनेन्स हैं और न कानून हैं। जब तक भारतीय जनता और उसके नेता जेलों में बन्द हैं तब तक सब उपाय फेल हो जायेंगे, अन्तिम उपाय एक ही है कि महात्मा गांधी की शरण जाओ और ३५ करोड़ भारतीयों के अधिकार को स्वीकार करो।

—

श्रीकृष्ण सूर्य पारवेत

उधर ६१ वर्ष के वृद्ध कवीन्द्र रवीन्द्र कविता की उड़ान के साथ आकाश की उड़ान में शैरवसन्ती के मकबेर की ओर जा रहे थे और इधर यह संसार इस विभूति की ६१ वीं वर्षगांठ मनाने की तैयारी कर रहा था। गत ८ मई को संसार के अनेक देशों ने बड़ी धूमधाम से इस वर्षगांठ को मनाया है। रवीन्द्र अपने समय की अलौकिक विभूति हैं। अपने क्षेत्र में संसार का जो के सम्मान पा चुके हैं। अन्तर्राष्ट्रीय स्वाधीनता और मानवीयता के आप परम उपासक हैं और इसके प्रधान प्रचारकों में से हैं। आपका शान्तिनिकेतन सच्चे अर्थों में अनेक सन्तप्त आत्माओं को शान्ति प्रदान कर चुका है। आप पराधीन देश में पैदा होकर भी आज संसार के सर्वोत्तम व्यक्तियों में समझे जाते हैं और भारतवर्ष को इनका गर्व है। हम भी इस शुभ अवसर पर अपनी नम्र श्रद्धाञ्जलि उपस्थित करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि परमप्रभु आपको सौ साल से भी अधिक काल तक स्वस्थचित्त के लिये जीवित रक्खें और स्वास्थ्य प्रदान करें ताकि आप अपने मनुष्यप्रेम के संदेश को विश्वव्यापी बना सकें और लोगों का उपकार कर सकें।

सम्पादकीय :—

द्विवेदी जयन्ती :—

हमें इस बात का हर्ष है कि अब हिन्दी संसार भी अपने निरीह साहित्य सेवकों को मान की दृष्टि से देखने लग गया है और उनकी याद मनाने लग गया है। जगह २ पर हरिश्चन्द्र, सूरदास और तुलसी आदि की शताब्दियाँ आदि मनाने का प्रयत्न इसका प्रमाण है। हिन्दी साहित्य के वृद्ध पितामह आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी की जयन्ती के अवसर पर हम भी आपका अभिनन्दन करते हैं। आप उस समय से हिन्दी साहित्य की सेवा कर रहे हैं जब कि हिन्दी का अपना साहित्य बहुत ही थोड़ा था। आपने अपने जीवन के उतार चढ़ाव के साथ २ हिन्दी साहित्य के उतार चढ़ाव को भी देखा है, और तन मन धन से निरन्तर इसकी सेवा करते हुए इसे वर्तमान स्वरूप देने में सफलता प्राप्त की है। आपने अनेक मौलिक ग्रन्थ लिखे और लिखवाए, अनुवाद किये और करवाये तथा आलोचना आदि की नई २ परिपाटियों का हिन्दी जगत में समावेश किया। आपने अपना सम्पूर्ण वैयक्तिक पुस्तकालय काशी की नागरी प्रचारिणी सभा को समर्पित कर दिया और जो सम्पत्ति थी उसे भी हिन्दी सेवा में पानी की तरह बहा दिया। इस वृद्धावस्था में भी बचा खुचा धन दानवृत्तियों के रूप में हिन्दू विश्वविद्यालय को भेंट कर दिया। हिन्दी साहित्य का यौवन उन्हीं का लगाया हुआ है और अब भी इसकी सेवा के लिये उनकी नसों में अदम्य उत्साह है। उनका यह उत्साह और सेवावृत्ति नवयुवकों के लिये अनुकरणीय है। हम आशा करते हैं कि हिन्दी संसार आपको उचित मान देगा और प्रार्थना करते हैं कि प्रभु आपको चिरजीवी करें ताकि चिरकाल तक आप हिन्दी जगत में नवयुवकों को राह दिखा सकें।

विपिन चन्द्र पाल का देहावसान

बंग भंग-आन्दोलन और १९०८ के स्वदेशी आन्दोलन के प्रसिद्ध नेता श्री विपिन चन्द्र पाल का देहावसान हो गया है। आपने अपने समय में राष्ट्र की अमूल्य सेवा की थी। दो बार जेल भी गए। आप प्रौढ़ विद्वान, चतुर सम्पादक और मंजे हुए वक्ता थे। [illegible] पीछे से विचार भेद और मौलिक तथा धार्मिक विचारों [illegible] आप [illegible] से पृथक हो गये थे परन्तु आप की आत्मा तो आजीवन [illegible]। इस अपनी [illegible] शक्ति [illegible] हैं

२८ मई को सत्कृतोत्साहिनी सभा की ओर से एक 'राज कवि सम्मेलन' का आयोजन किया गया है जिसमें प्रसिद्ध राजा विक्रमादित्य के एक राज-कवि-सम्मेलन का सजीव चित्र खींचा जाएगा। श्री प्रो० श्याम गुप्त जी राजा विक्रमादित्य होंगे।

सम्पादकीय :—

(स्थानीय चर्चा)

अपने से :—

सब से पहली शिकायत हमें अपने से अथवा अपने महाविद्यालय के भाइयों से करनी है। हम चाहते थे कि इन विचारों पर जरा कुछ ठहर कर प्रकाश डालें पर घटनाक्रम ने तथा एक सम्पादक के कर्तव्य ने इतनी जल्दी इस ओर कलम उठाने के लिए बाधित कर दिया है। कई बार हम बड़ी मामूली और छोटी २ पर मौलिक बातों को भी विचार करते समय भुला देते हैं जिस का परिणाम यह होता है कि जब कभी हम सामूहिक रूप से किसी बात पर विचार करने लगते हैं तो उस में से उत्तरदायित्व और गम्भीरता का अंश नष्ट हो जाता है। अधिक दूर न भी जायें तो हाल में हो चुकने वाले साहित्य-परिषद् के वार्षिकोत्सव, व्याख्यान और कुल सभा की कुछ घटनायें इस का मोटा उदाहरण हैं। साहित्य-परिषद् के वार्षिकोत्सव की तो अधिकांश कार्यवाही इस वर्ष विचित्र ढंग से हो रही थी। जहां पिछले आचार्य जी विद्यार्थियों की सम्मति से कभी २ अधिक स्वेच्छा से काम लेते थे वहां इस वर्ष हमारी सम्मति में वर्तमान आचार्य जी ने बहुत ही ढील से काम लिया। कई ऐसी गम्भीर और विचारणीय बातें भी प्रसंगवश विचारार्थ आई थीं जिन पर कि सभापति श्री आचार्य जी को जरा कुछ सख्ती तथा सावधानता से काम लेना चाहिये था क्योंकि ये सब चीजें हमारी शिक्षा का अंग समझी जाती हैं। इस के विपरीत हो यह रहा था कि मंत्री महोदय ही बिना सभापति से किसी प्रकार का परामर्श लिए सभा का संचालन कर रहे थे। वे ही प्रत्येक बात का उत्तर देते थे और कभी २ तो order और ruling भी दे डालते थे। विचित्रता यह थी कि बिना प्रस्ताव ही संशोधन मांगे जा रहे थे। इस के अतिरिक्त अन्तिम समय में तो सभापति महोदय कुछ एक विद्यार्थियों के साथ नियम बना रहे थे, नवीन मंत्री बजट बना रहे थे, कुछ एक विद्यार्थी एक तरफ कार्यकारिणी के सदस्यों की सम्मति मांग रहे थे और अधिकांश भाई सभा छोड़ कर चले जा रहे थे। खैर, यह सब तो तुच्छ पर एक बात है जो कि हमें बहुत ही विचित्र और कुछ अंशों में अनुचित भी जान पड़ी और जिस की ओर गम्भीरतापूर्वक पाठकों का ध्यान आकर्षित करना हम अपना कर्तव्य समझते हैं। जिस समय मंत्री के कुछ कार्यों के प्रति असन्तोष प्रकट करने के लिए एक भाई ने एक आने की कटौती का संशोधन (?) रखा था उस समय कुछ भाइयों ने एक आने की जगह दो पैसे कर देने का संशोधन उपस्थित किया था जो कि मूल संशोधक ने मान भी लिया था। पर विचित्रता यह थी कि सम्मति देने के समय दो पैसे वाले भाई भी-

स्वयं अपने संशोधन के विपरीत सम्मति दे रहे थे। पाठक स्वयं सोच सकते हैं कि इस काम में कितना औचित्य और आत्म-संगति है। जहां नैतिक दृष्टि से यह अनुचित है वहां व्यावहारिक दृष्टि से असाधारण [?] है। मंत्री को एक आना व दो पैसे देने चाहिये या नहीं इस पर मतभेद हो सकता है पर इस के लिए इन बातों का पारस्परिक विचार के समय आश्रय लेना हमें नहीं समझ आता। प्रथम तो सब जानते हैं कि 'यदि' मंत्री को एक आना देकर यह भी जाना तो वह उस से गरीब नहीं हो जाता और न इस लिए रक्षा ही मना था। यदि किसी ने एक आना अधिक समझा हो और उस की जगह दो पैसे कर देना चाहा हो तो यह भी समझ आता है। परन्तु इतना तो स्पष्ट है कि एक आने वाले व दो पैसे वाले संशोधनों का आधार में एक ही बात थी। दोनों का मतलब यही था कि मंत्री का दोष है और उसे के प्रति इस प्रकार से असन्तोष प्रकट करना चाहिये। सम्मति देने के समय स्वयं अपने विरुद्ध सम्मति दे कर दो पैसे के संशोधन वाले भाई समझ सकते हैं कि उन्हों ने मंत्री का पक्ष ले कर उस की रक्षा की है पर थोड़ा सा विचार से पता लग जायगा कि उन्हों ने भी मंत्री को उतना ही दोषी समझा है जितना कि एक आने वालों ने। भेद केवल एक आने और दो पैसे का है। यदि मंत्री का दोष नहीं था तो सीधा संशोधन का विरोध करना चाहिए था न कि साथ मिल कर मंत्री को दोषी ठहराना चाहिए था। और तो कुछ नहीं, इस से हमारे अन्दर उत्तरदायित्व की भावना का अभाव प्रतीत होता है। आश्चर्य यह था कि सभापति जी ने भी इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया।

यही बात एक दफा गुरुकुलीय राष्ट्रीय महासभा की विषय समिति में भी झलकती थी। प्रस्ताव समिति से आशा की जाती थी कि वह अपने प्रस्तावों के विरोध में सम्मति दे। भला इस में कहां तक संगति और औचित्य प्रतीत होता है। विरोध में सम्मति देने पर अपने सब प्रस्तावों को फेल करने का निश्चय किया जाता था। यद्यपि यह सब बातें नकली ही पर हम को यह पता तो नहीं चलता चाहिए कि वह नकली भी न रहे। इसी भाव का प्रकाश महासभा के खुले अधिवेशन की द्वितीय बैठक में हुआ था। कांग्रेस के और सारे प्रस्ताव फेल हो जाते तो शायद हम को इतना आश्चर्य न होता जितना एक स्वाधीनता के प्रस्ताव के फेल हो जाने से हुआ। कइयों को भय था कि कहीं हमारी का भेद और उस के साथ गुरुकुल भी कांग्रेस का शिकार न हो जाए पर इस प्रस्ताव को फेल करके निःसन्देह हमारे कुछ भाइयों ने इस भय को दूर कर दिया। पर क्या यह हमारी भावना के अनुकूल था? क्या स्वाधीनता का प्रस्ताव फेल करने को हमारी गुरुकुलीय कांग्रेस ही रह गई थी? हम जानते हैं कि हमारे भाई वीर [?] स्वाधीनता के कम पक्षपाती नहीं हैं और उन का इसी प्रस्ताव को फेल करने का अधिक इरादा भी न था पर इतना तो स्पष्ट है कि उन्होंने यह तो अधिक विचार कर सम्मति नहीं दी पर फिर अपने उत्तरदायित्व की भी उपेक्षा की। हम ऐसे कई महानुभावों को जानते हैं जिन को कि प्रस्ताव तो मालूम तक न था पर हाथ सब से ऊंचा उठा रहे थे। कई तो पण्डाल के बाहिर से ही हाथ उठाए चले आ रहे थे।

यदि यह तो फिर भी कुछ उचित प्रतीत होता है कि कोई व्यक्ति सब से अपने पक्ष में सम्मति देने की आग्रह करे। परन्तु यदि कोई भाई सहमत न हो और विपरीत सम्मति दे तो यह नहीं होना चाहिए कि फिर अविचारपूर्वक आवेश में आ कर प्रत्येक प्रस्ताव को फेल कराने की कोशिश की जाए चाहे अपना मत उस के कितना ही अनुकूल क्यों न हो। हम ने प्रस्ताव तो फेल कर दिया पर यह कभी न सोचा कि कोई कार्य हुआ वरन् इस से यह दिखाते हैं कि हम स्वार्थपरता के विरोधी हैं। इस सब का कारण यही है कि सामूहिक विचार करते समय हम गम्भीर नहीं रहते और अपने उत्तरदायित्व को सर्वथा भूल जाते हैं।

यही हाल गुरुकुल समस्या पर विचार करने के लिए बैठने वाली कुलसभा का था। कुलसभा हमारी उन सभाओं में से है जिस में कि हम किसी विषय पर [?] दृष्टि से गम्भीरतापूर्वक विचार करने के लिए एकत्र होते हैं। परन्तु वहां भी प्रायः हम कई बार ऐसी बातें कह जाते हैं जिन को हम स्वप्न में नहीं कह रहे होते पर समझ नहीं रहे होते। गुरुकुल की समस्या तो ऐसी ~~होती~~ है कि इस के लिए हमें बजट आदि पर और इस के अतिरिक्त अन्य अनेक बातों पर विस्तारपूर्वक विचार करना होगा। तभी हमारे निर्णय किसी को मान्य हो सकेंगे। उस दिन जिस प्रकार से विचार हो रहा था उस से तो कोई भी बात स्पष्ट न हो पाती थी। कोई भाई उपसमिति न बना कर उसी दिन सब निर्णय कर डालना चाहते थे। यदि हम ने कुलसभा में केवल सिद्धान्तात्मक विचार ही करना होता और उस की कोई क्रियात्मक योजना न होती तो हम भी अवश्य उपसमिति आदि बनाने की आवश्यकता न समझते। परन्तु जब हम अनुभव करते हैं कि हमारे कुलसभा के निर्णय को केवल कुलमन्त्री अधिकारियों तक पहुंचना और आवश्यकता हो तो उसे भी तब हमें उस निर्णय से पूर्व भली भांति विचार कर लेना चाहिए। अन्यथा हमारी और हमारे प्रतिनिधियों की स्थिति हास्यास्पद होती है। यद्यपि अब एक कुलसभा की उपसमिति बना तो दी गई है पर हमारी सम्मति में उस से कोई विशेष लाभ नहीं है क्योंकि जहाँ इस ने एक उपसमिति बनाने के अतिरिक्त किसी और बात पर विचार करना आवश्यक नहीं समझा परन्तु जिस समिति की terms of reference - कार्य क्षेत्र निश्चित नहीं किया गया वह [illegible] तक विचार कर सकती है और साधारण सभा के लिए सहायक हो सकती है। उपसमिति तो किसी चीज़ की बनाई इस लिए जाती है कि उस में विचारार्थ प्रस्तुत विषय के विशेषज्ञ हों और जो कि साधारण सभा के आदेशानुसार किसी विषय पर details में विचार कर के अपनी रिपोर्ट तैयार करे जिस पर फिर पुनः साधारण सभा में विचार हो। ऐसा कुछ तो इस ने किया नहीं। परन्तु [?] कुलसभा की उपसमिति इस पर तो विचार कर सकती है कि एक विशेष नीति को ध्यान में रखते हुए यदि गुरुकुल ~~[illegible]~~ [illegible] ~~[illegible]~~ किया जा सकता है तो ~~[illegible]~~ कितना व्यय किया जा सकता है और किस प्रकार। अथवा यदि [illegible] चलाता है तो वह किस प्रकार सफलतापूर्वक चल सकता है, कौन कौन से साधन होंगे, कितने धन पर विद्यार्थियों का अधिकार होगा ... आदि। पर एक उपसमिति

के सदस्य इस बात का निर्णय किस प्रकार कर सकते हैं कि आया श्रीयुत काम किया जाए या बरोरू सिलम कर दिया जाए। दोनों विचार सभा के विचारार्थ उपस्थित थे और हम के पक्षपात के प्रयत्न करते हैं कि इस का निर्णय क्या हुआ और किस प्रकार हुआ। बिना किसी रीति का निर्णय किए उपसमिति को रिपोर्ट तैयार करने का आदेश दे दिया गया है। हम आशा करते हैं कि इन्हीं बातों की ओर आगे उचित ध्यान दिया जाएगा। और हमारे पाठक यदि हमारे कर्तव्य पालन में कहीं कठोरता का भी अनुभव हो तो उसे क्षमा करेंगे पर हमारी बातों की ओर उचित ध्यान देंगे।

चतुर्विध वा पञ्चविध कार्यक्रम

हमारा विचार था कि श्री आचार्य जी अपने गुरुकुल सम्बन्धी राष्ट्र सेवा के कार्यक्रम को इतनी जल्दी प्रारम्भ न करेंगे। परन्तु अब आप ने उसे बाकायदा प्रारम्भ कर दिया है। ब्रह्मचारी चार व पांच विभागों में विभक्त हो गए हैं। प्रत्येक विभाग का दिन नियत हो गया है और ब्रह्मचारी काम पर जाने भी लग गए हैं। हम चाहते थे कि कुछ दिन और ठहर कर और कार्यक्रम की गतिविधि को देख कर विस्तार से पाठकों के सामने अपने विचार उपस्थित करते। परन्तु इतनी जल्दी कार्यक्रम प्रारम्भ कर देने की अवस्था में कुछ अपने विचार इस विषय में स्पष्ट कर देना हमारे लिए आवश्यक हो गया है। हम खूब अच्छी तरह समझते और अनुभव करते हैं कि हमारे नवीन आचार्य गुरुकुल में - विशेष कर महाविद्यालय विभाग में - क्रियात्मक और व्यावहारिक शिक्षा को स्थान देने के लिए कितने अधिक उत्सुक और आकुल हैं। उन की प्रबल इच्छा है कि गुरुकुल के ब्रह्मचारी मानसिक शिक्षा के साथ २ शारीरिक और आध्यात्मिक शिक्षा भी प्राप्त कर सकें और विद्याध्ययन के साथ २ कुछ क्रियात्मक राष्ट्रीय सेवा भी कर सकें। उन के आचार्य पद स्वीकार करने के बाद से लेकर आज तक दिए गए प्रत्येक भाषण में यह भाव टपकता है। इस का कारण यही है कि वे हृदय से ऐसा चाहते हैं। महाविद्यालय के विद्यार्थियों के लिए अपने जूठे बर्तन स्वयं साफ करने का नियम आप जारी कर चुके हैं और कातने आदि की भी प्रेरणा करते रहते हैं। यद्यपि हम नियम बना कर जूठे बर्तन साफ कराने के अधिक पक्ष में नहीं थे पर ऐसा हो जाने पर क्रियात्मक रूप से उस का विरोध करने के भी हम पक्षपाती नहीं हैं। परन्तु इन सब से अधिक गम्भीर और महत्व पूर्ण कार्य, - जिस की ओर हम पाठकों का विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं, - उन का राष्ट्रीय सेवा का चतुर्विध व पञ्चविध क्रियात्मक कार्यक्रम है जो कि इन्हों ने हमारी आशा और अनुमान के विपरीत कुछ दिनों से प्रारम्भ कर दिया है। हम किसी भी प्रकार की राष्ट्रीय सेवा व क्रियात्मक कार्यक्रम के विरोधी नहीं हैं अपितु वर्तमान अवस्थाओं में इन के महत्व और आवश्यकता को दिल से स्वीकार करते हैं। हमारी तो दृढ़ सम्मति और उत्कट अभिलाषा है कि प्रत्येक भारतीय नवयुवक को और विशेष कर विद्यार्थियों को वर्तमान समय में अपनी २ शक्ति-

का होगा। इस प्रकार भी एक उपाध्याय जिसका मुख्य काम अध्यापन है और उपयोग काम। अतिरिक्त कार्य के रूप में है- इस विषय में उचित रूप से non-serious हो सकता है। परन्तु इसी बात की पीठ पर यदि केवल किसी की वैयक्तिक इच्छा न हो कर बाकायदा प्रतिनिधि सभा की आकृति होती तो उपाध्यायों के सामने दो विकल्प स्पष्ट होते। इस समय सहज इन सब बातों का स्वरूप प्रकाश कोरी और कार्य भी सुचारु रूप से आशिक सफलता के साथ बाका- यदा एक योजना के रूप में किया जा सकता है। यह न हो कि कुछ दिन तक जो कर सके से काम कर जाए और जब न चली तो अगर पर बैठ गए। इस प्रकार के कार्य को सम्भव है कोई महानुभाव व्यक्तिक महत्त्व भी न दे। इस प्रकार हमारी सम्मति में उपाध्याय इस तरह क्रियात्मक रूप में सहयोग दे सकते हैं अपने सब काम निभा सकते हैं और सकारात्मक भी कर सकते हैं। इसी लिए हम यह चाहते थे कि कोई आचार्य जी जागें और ठहर जाएं और इन सब बातों पर विचार कर के उचित प्रबन्ध के साथ आप ने कार्यक्रम को क्रियात्मक रूप दे दें।

इसी प्रकार यदि सब ब्रह्मचारी भी इस काम को इच्छापूर्वक करने के लिए उद्यत नहीं हैं और कुछ non-serious हैं तो उस के भी उपयोग के कारणों के अतिरिक्त अन्य अनेक कारण हो सकते हैं। सब से पूर्व इतना तो मान लेना चाहिए कि महाविद्यालय का एक विद्यार्थी- चाहे वह कितना ही विनय-प्रिय और अनुशासन-प्रिय क्यों न हो- अपने विषय में न औरों के विषय में सोचने की ताकत रखता है और उसका इसे काम में लाने का पूरा अधिकार है। एक विद्यार्थी इस लिए भी किसी काम के प्रति non-serious हो सकता है- जैसा कि कोई भी व्यक्ति हो सकता है- कि वह उसकी इच्छा के प्रतिकूल हो। पर यह कोई बड़ी युक्ति नहीं है। बात यह है कि गुरुकुल के विद्यार्थियों का आवश्यक काम यही समझा और माना जाता रहा है कि वे संसार और गुल से दूर एकान्त जंगल में घर बाहर की चिन्ताओं को छोड़ कर निश्चिन्त अध्ययन काल की अवधि समाप्त होने तक निरन्तर गुरुओं से विद्या-लाभ करता रहे और अपना अध्ययन रत रहे। इस कल्पना के अनुसार ही यहाँ की पाठविधियाँ बनाई जाती हैं और वातावरण में देखा जाए तो गुरुकुल के विद्यार्थियों पर अपने रचनात्मक का पर्याप्त भार है। इस अवस्था में उन के ऊपर अगले बोझ को बिना कम किए एक और बोझ लाद देना कहाँ तक उचित और सकता है। सम्भव है कि अधिकांश ब्रह्मचारी अपना समय अध्ययन में न बिता कर खाली गप्प आदि में बिताते हों पर इस के लिए उन का यत्न एक और तरफ लगा देना कहाँ तक सहायक हो सकता है चाहे नया कार्य कितना ही उपयोगी क्यों न हो। इस के अतिरिक्त उचित तो यह प्रतीत होता है कि पहले ब्रह्मचारियों का course इस कार्यक्रम को पेश कर के कुछ कम करा लिया जाए और फिर उन को इस ओर आने की प्रेरणा की जाए क्योंकि हो सकता है कि कुछ विद्यार्थी अपना समय अध्ययन के लिए देते हों न देना चाहते हों। पर हो इस के विपरीत रहा है। कोई यह भी कह सकता है कि दिन प्रति दिन गुरुकुल के विद्यार्थियों की योग्यता एवं विशेष किस्म के विशेष प्रकार से घटती जा रही है अतः आचार्य जी को उपाध्यायों के साथ मिल कर एक प्रबल-

आग बन जाए तो हमें इस प्रकार की कभी भी आपत्ति न होगी। उस अवस्था में संस्था को सदा अपनी नीति के परिणामों का सामना करने के लिए उद्यत रहना चाहिये। पर कोई संस्था जिस बात के लिए stand नहीं करती है उस के लिए उसे अपने को खतरे में डालना चिन्तनीय हो सकता है। हम तो स्वयं चाहते हैं कि हमें संस्था-रूप में कुछ न कुछ कार्य इस दिशा में अवश्य करना चाहिए और हम समझते हैं कि श्री आचार्य जी इस के लिए प्रयत्न भी कर रहे थे परन्तु उस अवस्था में इतनी जल्दी ऐसा कर डालना हमारी सम्मति में अधिक लाभ-प्रद नहीं है।

ये थोड़े से हमारे इस विषय में विचार हैं जिन को उपरोक्त परिस्थिति ने इतनी जल्दी हमें पाठकों के सामने प्रकट करने को बाधित कर दिया। हो सकता है यह कहा जाए कि हमारा इन बातों से क्या सरोकार है परन्तु अपने कर्तव्य को सामने रख कर हमने ऐसा करना आवश्यक समझा है और इन के द्वारा सम्भव है कि विचार-विमर्श में कुछ सहायता हो सके। नवीन बातों और घटनाओं के प्रकाश में अपने विचार सहर्ष रूप से कभी भी बदलने को उद्यत हैं। श्री आचार्य इस कार्य के संचालक हैं और वे serious हैं अतः उन्होंने भी serious हो कर ही निश्चय किया हो। इस समय इतना तो हो सकता है कि कुछ एक विद्यार्थी अपना समय रात्रि को प्रायः गप्पशप्प में बिताते हैं - उन को यदि कहें तो आचार्य जी साथ ले कर कुछ काम करते चले जाया करें। इस से अधिक कार्य हमारी सम्मति में व्यावहारिक और वांछनीय नहीं है। हम आशा करते हैं इन बातों पर ध्यान दिया जायेगा और ब्रह्मचारी तथा उपाध्याय भी उस समय आचार्य जी का दिल से पूरा सहयोग देंगे।

नियम और उसका पालन

पाठकों को हमारे परम सहयोगी 'सर्वहित' की 'सम्पादकीय टिप्पणी' से पता लग चुका होगा कि इस वर्ष कांग्रेस के अवसर पर कार्यकारिणी सभा के मंत्री परिवारों से माताओं को भी उचित प्रबन्ध के साथ आमन्त्रित करना चाहते थे और इस विषय में उन्होंने गुरुकुल के कुछ अधिकारियों से भी बातचीत की थी। जैसा हमें पता लगा है कि श्री आचार्य जी ने इस विषय में नई प्रथा डालने के लिए कुछ सलाह आदि करने का आश्वासन दिया था। परन्तु मुख्याधिष्ठाता जी ने साफ इन्कार करते हुए कहा था कि यह नियम है अतः आज्ञा नहीं दी जा सकती। नियमों के अपवाद भी होते हैं और हमारे अपने गुरुकुल में होते रहे हैं - यह ठीक है कि नियमों के अपवाद अधिक नहीं बनाने चाहिये। जहां नियम का अपवाद करने में हानि न हो और उस के विपरीत लाभ हो, वहां तो अपवाद कर ही देना चाहिए

इसी तरह सोया जाएगा तो काम चलना बहुत कठिन हो जाएगा। ? E. Robins के शब्दों में काफी सत्यता है कि "The world is what you make it, the sky is grey or blue. Just as your soul may paint it, It is not the world. It's you". इस के अतिरिक्त शिक्षा की दृष्टि से यात्रा का कितना महत्त्व है यह तो किसी से छिपा नहीं है। गुरुकुल में तो इस के लिए विशेषरूप से "सरस्वती यात्रा" को स्थान दिया गया था। यात्रा से विचार विकसित होते हैं, स्वभाव परिमार्जित होता है, अनुभववृद्धि होती है, आनन्द आता है, परिवर्तन होता है और स्वास्थ्य की उन्नति भी हो सकती है। हमारी सम्मति में उचित प्रबन्ध के साथ ब्रह्मचारियों को यात्रा करवाने ले जाना चाहिये और रास्ते में आने वाले कष्टों का निवारण करना चाहिये। कम से कम नवम-दशम के भाइयों को तो प्रायः इन दिनों इधर उधर ले जाना चाहिए। ये ही तो दिन निश्चिन्त होकर घूमने फिरने के होते हैं। अन्यथा यहां लाने से अच्छा है कि इन दिनों में कहीं भी घर जा सकने का नियम कर दिया जाए। हम आशा करते हैं कि इस ओर उचित ध्यान दिया जाएगा और इस वर्ष जब वे यहां आ ही गए हैं तो इन को यथासम्भव आस पास के उत्तम स्थलों पर घूमने के लिए ले जाने का प्रबन्ध किया जाएगा।

नम्र निवेदन :-

हम इस अंक में अपने छोटे ब्रह्मचारियों का गत वर्ष का तोल आदि का ब्यौरा प्रकाशित करते हैं। हमें इस बात का अत्यन्त हर्ष है कि उस के अनुसार ब्रह्मचारियों ने पिछले साल उस से पहले साल से अपने स्वास्थ्य आदि में उन्नति की है। इस के लिए हम चिकित्सालय के अध्यक्ष तथा स्वास्थ्य विभाग के अध्यक्ष डा॰ सत्यपाल जी का जितना धन्यवाद करें थोड़ा है। आप जितनी क्रियाशीलता तत्परता हितचिन्तना से ब्रह्मचारियों के स्वास्थ्य का तथा अन्य बातों का ध्यान रखते हैं सो सब कुलवासियों को विदित ही है और वास्तव में ब्रह्मचारियों की अवस्था में उन्नति का अधिकांश श्रेय आप को ही है। पर हम समझते हैं कि छोटे ब्रह्मचारियों के स्वास्थ्य, रहन-सहन तथा खान पान पर और अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है क्यों कि बाल्यावस्था में दिया गया ध्यान जीवन पर्यन्त काम आता है और आशा करते हैं कि सब अधिकारियों के सहयोग से डाक्टर जी इस काम में सफल होंगे। इस के अतिरिक्त हमारी सम्मति में छोटे ब्रह्मचारियों की तरह महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों का ब्यौरा तैयार रखने की भी बड़ी आवश्यकता है। ब्रह्मचारी के स्वास्थ्य और मानसिक अवस्था पर गुरुकुल में विशेष ध्यान दिए जाने की आवश्यकता है और इस के लिए प्रत्येक व्यक्ति का अलग २ ब्यौरा अत्यन्त सहायक हो सकता है। हम आशा करते हैं कि हमारे विद्यालय के भाई इस बात में डाक्टर जी को पूरा सहयोग देंगे।

इस प्रकरण में हमें एक बात की ओर और ध्यान आकर्षित करना है। यह हमारी संस्था यद्यपि पूर्णरूप से सार्वजनिक नहीं है पर कभी २ ऐसा ही समझा जाता है। ~~हम चाहते हैं~~ तदनुसार प्रत्येक-

धनिक को उभारे तथा संस्था के विकास में विचार करने का अवसर दिया जाता है। यह सब ठीक है पर इस की भी सीमा और ध्यान होना चाहिये और आवश्यकता से अधिक हस्तक्षेप नहीं किया जाना चाहिये। होता यह है कि जब कोई अच्छा डाक्टर बाहिर से आता है तो उसे ब्रह्मचारियों के तथा गुरुकुल के निरीक्षण के लिए कह दिया जाता है। बात तो भली लगती है पर इस से लाभ न हो कर स्थानीय उत्तरदाता के रास्ते में बाधा आ जाती है और पूरी बड़ी विडम्बना लगता है। प्रथम तो जो आदमी कुछ दिन के लिए उत्सव पर आया हो वह क्या तो निरीक्षण कर सकता है। यदि ब्रह्मचारियों को पंक्ति में खड़ा कर के उसे दिखा भी दिया जाए तो वह क्या लाभदायक सम्मति दे सकता है। कुछ कहना अवश्य होता है इस लिए वह अपनी गुरुकुल की कल्पना के अनुसार कुछ सलाह दे जाता है। उस दिन हम बड़े मनोयोग से सहारनपुर के सिविल सर्जन साहिब की बातें सुन रहे थे। वे तो बड़ी अजीब २ सलाहें दे रहे थे। हम समझते हैं इन बातों से स्थानीय व्यक्ति का मार्ग कठिन हो जाता है बजाय इस के कि उसे सहायता मिले। कोई तो कुछ कह जाता है और कोई कुछ। जो कुछ हो रहा है वह भी कह गए - सहारनपुर वाले सर्जन साहिब उस से उलटा कह गए। सब को इस प्रकार किसी की बातें के रूप में दिखाने की आवश्यकता भी क्या होती है। वह प्रेम से देख भी नहीं सकता और इसी प्रकार कभी २ कहना पड़ जाता है कि लड़कों को नदी की धराई पर खड़ा कर देना- हम जो समय पर ठहर कर जहां देख लेते हैं यदि कोई खास case हो और बाहर के डाक्टर सलाह लेना चाहें तब तो और बात है। यदि यहां के सब डाक्टर मनोयोग से और रुचि से इस ओर ध्यान दें और ब्रह्मचारियों की देख रेख में भी कुछ अपना समय दें तो ऊपर जैसी बातों की आवश्यकता ही न रहेगी पर हमें बड़े खेद से यह स्वीकार करना पड़ता है कि आज इस ओर से उपेक्षा होती जा रही है। हां, यदि बाहिर के डाक्टरों के निरीक्षण आदि की आवश्यकता हो तो हम सलाह देंगे कि कुछ एक गुरुकुल के निरीक्षण का बाहर बाहिर के डाक्टर नियत कर लिये जावें जो कि योग्य हों और संख्या में सुविधानुसार तीन व चार हों। वे प्रति तीन मास के बाद क्रमशः यहां आया करें और कुछ दिन रह कर बाकायदा सब चीजों का निरीक्षण करके अपनी सलाह आदि दिया करें। यह अधिक सहायक हो सकेगा।

यही हाल हमारे विश्वविद्यालय व्याख्यानों का है। बाहिर से कोई व्याख्याता महोदय बाकायदा नियमित नहीं किए जाते जो कि तैयारी आदि कर के हमारे सामने कुछ आवश्यक और लाभप्रद बातें धर सकें जो कि सहायक हों। होता यह है कि यदि कोई विद्वान् इधर उधर से उत्सव आदि के लिए गुरुकुल देखने भी आ जाएं तो उन से प्रार्थना की जाती है कि वे जैसे तैसे तैयारी व बिना तैयारी के विश्वविद्यालय व्याख्यान दे जावें। भला जो आदमी छुट्टियां मनाने के लिए और दिमाग आदि को आराम देने के लिए हरिद्वार आया हो वह ऐसे अवसर पर कुछ गम्भीर

और कामचलाऊ बात हमारे सामने उपस्थित करता है। इस से हमारा standard low होता है और लाभ कुछ नहीं। इस के अतिरिक्त बेचारे उपाध्याय भी अनुभव करते हैं कि हमारे छोटी-छोटी व्याख्यानों का कोई महत्त्व ही नहीं जो हर एक अच्छा बड़ा आदमी विद्यालय के समय व्याख्यान दे जाता है। हमारी सम्मति में ऐसे व्याख्यान विद्यालय से अतिरिक्त समय में सभाओं की ओर से होने चाहियें और विश्वविद्यालय व्याख्यानों के लिए बाकायदा बाहिर से विद्वानों को निमन्त्रित करना चाहिये ताकि कुछ लाभ भी हो सके। हम आशा करते हैं कि इन सब बातों पर ध्यान दिया जायगा।

दो भाई और

दो भाई और गुरुकुल छोड़ कर चले गए हैं और सम्भवतः इस अंक के पाठकों के हाथ में आते तक उन में से कई कृष्णा मन्दिर के अतिथि बन चुके होंगे। इस विषय में हमें जो कहना था वह हम पिछले राजहंस के अंक में लिख चुके हैं। परन्तु पीछे से जाने वाले भाइयों के विषय में हमें शोक हुआ है कि उन के जाने के समय आचार्य जी उपस्थित न थे और उन के पीछे उपाचार्य जी ने चाहा था कि जाने वाले भाई कुछ समय ठहर कर आचार्य जी की प्रतीक्षा कर लें। हमें उन के जाने न जाने के विषय में यहां अन-विरोध नहीं कहना है। यदि अब वे अपने देश की अवस्था को देखते हुए पढ़ाई छोड़ कर भी वर्तमान आन्दोलन में क्रियात्मक भाग लेना चाहते हैं तो हमें कोई शिकायत उन से नहीं है और न किसी को होनी चाहिये। उन की देशभक्ति और कष्टसहिष्णुता के लिए तो हमारे दिलों में अपार मान का भाव होना चाहिये। परन्तु हम समझते हैं कि यदि ये भाई एक दो दिन के लिए आचार्य जी की प्रतीक्षा कर के उन से अनुमति लेकर जाते तो कोई नुकसान न था और अधिक अच्छा था। फिर एक तो जिन भाइयों के दिल में उसी रोज गुरुकुल छोड़ कर जाने का भाव आया था उन को भी विचार का कुछ और अवसर मिल जाता और आचार्य जी को भी उन को उन की परिस्थिति और कार्य आदि समझाने का अवसर मिल जाता। यह तो ठीक है कि न उन को जबर्दस्ती रोका जा सकता था और जबर्दस्ती पढ़ने की इच्छा उन में पैदा की जा सकती थी पर फिर भी हमारी सम्मति में आचार्य जी की उपस्थिति में उन के उपदेश और सलाह को लेकर एक दो दिन ठहर के जाना भी अधिक अच्छा था।

शुल्क विरोध

इस अंक के तैयार होने की अन्तिम अवस्था में हमारे पास शुल्क विरोधक कुलसभा का निर्णय आया है। हमें आशंका थी कि शायद बजट आदि कुछ निश्चित न बन जाए परन्तु हर्ष है कि वह पर्याप्त परिपुष्ट नहीं होता है यद्यपि [illegible]

कविता-कुञ्ज

- मस्ताने का गीत -

जो माने नहीं मनाये से उस को कर जोर मनाना क्या।
जो जान बूझ कर बधिर हुआ उस को हित अहित सुनाना क्या।
उस छिन-छवि छैल छबीले की छवि देख आँख झपकाना क्या।
बिन जीभ अनाहत नाद हुआ कर आहत जीभ थकाना क्या।

जब घर से बाहर निकल पड़े तब बस्ती क्या वीराना क्या।
मन ही अपना न रहा अब तो, जग अपना क्या बेगाना क्या।

कहती है बुरा कहे दुनियां, इस कुलटा को पतियाना क्या।
जब प्रेम-गली मे पांव धरा तब अपयश से घबराना क्या।

मत चेत हृदय। हो मस्ताना, चेता तो फिर मस्ताना क्या।
रह अपनी धुन में मस्त न सुन है कहता तुझे जमाना क्या।

श्री प्रो पशुपति जी

- आंसू -

क्यों न निकालूं मैं अरे दिल के निराले आंसू।

आंख में आये उमर मारे व्यथा के मेरी।
पोंछ डालूं लो इन्हें कौन सम्भाले आंसू॥
जान पाता जो कभी आज बिदाई होगी।
रे हृदय। मैं तो तभी लेता छिपा ये आंसू॥

इस लिये और न गा गीत भुला कर अपना।
बैठ जाता है ये दिल आज निकाले आंसू॥
बन्धुओ प्रेम भरी हाय पुरानी स्मृतियां।
भूल जायेगी तुम्हें जो न निकाले आंसू॥

" सुकुमार "

— रणक्षेत्र (युद्ध के बाद का) —

कितने वीर सुचिर निद्रा में सुन्दर सेज बिछा कर।
नहीं देखते, नहीं मसलते आंखों को तिरछा कर॥
कितना शोणित सींच चुका है समरांगण वक्ष स्थल।
फिर भी शान्त न हुई पिपासा बढ़ती जाती पल पल॥
कहीं एक जल बूंद नहीं है बीत चली हैं सदियां।
आज एक दिन में ही इतनी बही खून की नदियां॥
कहीं लगी होगी समाधि पर कहीं चितानल-ज्वाला।
कहीं पुष्प मालायें होंगी कहीं शुष्क चर माला॥
कभी सवेरे इन देहों पर रक्त सूर्य की किरणें।
सिर पर हाथ फेर पैरों पर कई लगेंगी गिरने॥
कहीं खून के पास गई जो कोई किरण सवेरे।
बैठ जायगी रो देने को वहीं एक शव घेरे॥
कहीं जली होगी निशीथ में स्नेह दीपकावलियां।
कहीं अकेली सुप्रभात में खिल जायेंगी कलियां॥
कहीं हजारों बरसों तक भी जुड़ा करेगा मेला।
किसी कब्र पर जुड़ न सका हा। अब तक एक अधेला॥

बलदेव क० १२ वीं

- साकी इक बार पिला दे --

साकी इक बार पिला दे।

बड़ी दूर से पैदल आया तेरा नाम यहां तक लाया
द्वार द्वार मुझ को भटकाया, दो इक बूंद पिला दे -

लाल लहू सी रंगत वाली जिस को पी दुनियां मतवाली
मेरे इन होठों पर लाली, इस से ही रंगवा दे -

इस मदिरा का रंग चढ़ा था भगत सिंह पी कर अकड़ा था
विप्लव का तूफान चढ़ा था नस नस आग लगा दे -

फांसी की परवाह नहीं थी, देश-प्रेम की चाह नहीं थी
पाये दुख पर आह नहीं थी ऐसा मस्त बना दे -

कितने पी कर मस्त हुए थे हो कर मस्त फाग खेले थे
तेरे प्याले में डूबे थे, वैसा रंग चढ़ा दे

तेरे मैखाने में आया प्याले की सुन कर के माया
रंग दे इन होठों की काया, अपना जाम लगा दे -

जामे दिल लबरेज किया था जिस ने तेरे हाथ पिया था
दिल जलना इक प्रेम दिया था, उस का नूर दिखा दे -

तेरी प्याली में डूबूंगा, तेरे हाथों को चूमूंगा।
पी कर मस्त बना घूमूंगा, भर भर जाम पिला दे -

श्री सुरेन्द्र जी

- पतिव्रत - (पतिपत्नी का)

राख की मुट्ठी हुआ दिल देख कर लुटता सुहाग।
भस्म कर दे देह को ज्वाला जिगर की आग आग॥

जीभ काठ हो गई खुलने लगी हा घोर पाप।
मैं करूं सन्देह उन पर ? जल मरूं जीती न आ।

विरह निगोड़ी भावना ने दिल दिया बरजोर पेल।
स्नेह सूखा जा रहा है आग .. तन पर उंडेल॥

आग जोबन को लगे जल जाय बत्ती सा शरीर।
गर्म लू सा हो चला हर श्वास का शीतल समीर॥

आग के अर्पण करूं मन को कि मैला मन न हो।
कल्पना की कीच से कलुषित हृदय-आसन न हो॥

कीच धो डालूं मगर हा। आंख में आंसू नहीं।
मैं नहीं वह मैं, कहूं क्यों कर कि तू वह तू नहीं॥

सांच को मेरे कर दे आंच। तू स्वीकार कर।
मैं नहीं सजनी सिपर, मुझ पर न जीवन भार कर॥

कुछ भड़कती आग से मैली न मेरी सौर है।
क्षार सा उज्ज्वल पतिव्रत कोयलों की मेर है॥

मान लूं क्या मैं कि मुझ को चाहते प्रियतम नहीं।
चाह प्रियतम की मुझे है कर सकी कुछ कम नहीं॥

है मुझे यह वर बचाना आज विरह की लाग से।
हूं चिता पर चढ़ रही उर कर हृदय की आग से॥

देह जल जाये मगर मैली न उन की चाह हो।
ढूंढती मेरे हृदय की राख उन की राह हो॥

श्री प्रो. चन्द्रपति जी

"रागी"

रागी तेरा सुमधुर गान ॥

सुन मतवाली दुनिया होती करके अमृत पान,
झूम झूम जाते नत होते करते सिर सम्मान ॥

वीणा की लहरी में होकर लीन, सुना मृदु तान,
मुग्ध विश्व पैरों पर रखता हृदय विवश हो दान ॥

यह विचित्र मादक मस्तानी सीधी सादी शान,
किसने तुम्हें सिखाई रागी, बालक भी यह बान ॥

गुणी सितारों की तारों पर उछली पड़ती जान,
तार तार से निकल रही है विश्वप्रेम की तान ॥

तूने रागी! सिखला गुजाया भाव दिये हैं दान,
तारों पर गाती पड़ते हो, हुआ ध्येय का ध्यान ॥

तेरी सुन्दर स्वर धारा में सब सन्ताप हुए अवसान,
सुनके कातर होता जगा शैशव का भोलापन नादान ॥

खूब नचाया एक समाजन, रखली माँ की आन,
"मोहन" मोहन हठ से तूने हरे हृदय-अपमान ॥

लाखों बात में किये शत्रु-मन, लिये हथेली प्राण,
यह उदार-आदर्श दिखाया, दिव्य हृदय सुमहान ॥

श्रीवेदव्रत जी

गल्प-समुच्चय.

मिलन —
(गल्प)

श्री विनायकराव जी

वैसे तो सभी आदमी इस संसार में आकर कुछ न कुछ पुण्य करते ही हैं, चाहे कोई कितना ही पापी क्यों न हो पर उसके जीवन में कभी न कभी एक समय अवश्य आता है जब कि उसके मन में धर्म की भावना जागृत हो उठती है — चाहे वह भावना दो ही घड़ी के लिये हो — पानी के बुदबुदों के समान — क्यों न उठी हो, पर पं बुद्धूराम को अपने पर गर्व था। वे समझते थे कि मैं जो कुछ कर रहा हूँ वह एक बहुत ही उत्तम कार्य है। साधु संन्यासियों की सेवा करना उनके जीवन का अंग सा बन गया था। ऐसा कोई साधु न था जो गांव में आया हो पर पंडित जी से न मिला हो। बुद्धूराम साधु का नाम सुनते ही उसे लेने दौड़ पड़ते थे। पं जी के मन्दिर पर घर पर मक्खियों की तरह साधुओं की भीड़ रहती थी। कभी गांजे सुल्फे की चिलमों पर चिलमें उड़ रही हैं तो कभी साधुओं को भोजन दिया जा रहा है। इस तरह पंडित जी की सारी की सारी मन्दिर की कमाई इन देवताओं पर चढ़ जाती थी।

पं बुद्धूराम रोज सवेरे तड़के ही उठते और मन्दिर में झाड़ू लगाते फिर स्नान संध्या कर ठाकुर जी का ~~सिंगार~~ सिंगार शुरू कर देते। यह उनका रोज का काम था। सारा गांव उनका भगत था उनके इशारे पर नाचता था। गांव वाले पं बुद्धूराम को भगत जी कहा करते थे। पं जी से सलाह मशवरा लिये बिना कोई काम न होता था। औरतें अपने गहने बनवाती थीं तो पहले भगत जी की सलाह जरूर ले लेती थीं। इस प्रकार पं जी गांव भर के कर्ता ~~धर्ता~~ धर्ता बने हुवे थे।

भगत जी के विरुद्ध मुंह खोलने तक की गांव भर में किसी की हिम्मत न थी, भगत जी की आज्ञा पत्थर की ~~लकीर~~ लकीर समझी जाती थी। पर उनकी स्त्री कुनिया ही ऐसी थी जो भगत जी को खूब आड़े हाथों लिया करती थी।

आये दिन भगत जी के घर मे कोई न कोई नया स्वांग होता ही रहता था।

रोज भ० जी अपनी बुद्धू-कमेटी मे फैसला करके आते थे कि आज श्रीमती जी से साफ कह देंगे कि झगड़ों से काम न चलेगा। रहना हो तो चुप चाप रहो। पर घर पर पहुंचते ही भगत जी की सारी तर्कना शक्ति काफूर हो जाती थी। मुह की बात मुह से निकाले न निकलती थी मानो किसी ने जबान पकड़ ली हो। भ० जी का धैर्य और साहस तो श्रीमती जी की सूरत देख कर ऐसा भागता था मानो इधर उसने कभी कदम ही न रखा हो।

(२)

एक दिन की बात है कि सरदियों के दिन थे, शाम के ६ बजे का समय था। इस समय काफी अन्धकार हो चुका था। ठण्डी हवा के झोंके तीर से शरीर मे चुभते थे। सरदी के मारे हाथ पाँव फूले जाते थे। गाँव के आदमी आग जला जला कर उसके चारों ओर बैठे हुवे थे। पर भगत जी को फुरसत कहां, अपना दुशाला ओढ़े भगत जी शाम की आरती की तय्यारी कर रहे थे। इसी समय किसी ने पुकारा भगत जी। मन्दिर ही में से वे बोले क्या है रामदीन ?

अजी एक साधु महाराज आए हुवे हैं। पहुंचे हुवे महात्मा मालूम होते हैं। बड़ी जोग की बातें करते हैं चलो तो सही। रामदीन ने कहा।

साधु का नाम सुनते ही भगत जी का हृदय कमल खिल गया और झट आरती कर बाहर निकल आये। और बड़ी उत्सुकता से बोले-

चल तो जरा रामदीन, बता कहां ठहरे हुवे है तू तो कह रहा है कि काफी देर से आये हुवे हैं, तो तूने मुझे पहले क्यों नहीं बताया।

साधु महाराज के पास पहुंचकर भगत जी ने उन्हें दण्डवत प्रणाम किया और उन्हें अपने साथ मन्दिर पर ले आये और लगे धर्म चर्चा करने। साधु महाराज की ज्ञान भरी बातें सुन कर भगत जी मोहित से हो गये। सब आदमी भी महाराज की बातों पर धन्य २ कहते जाते थे। भगत जी को आश्चर्य होगया की मेरी पत्नी की आदतों को महाराज अवश्य पूरा कर सकते हैं। ये योगी आदमी है। इनके लिये क्या दुर्लभ है। वह फौरन

की पुत्र रत्न प्राप्ति। भगत जी ने मौका देखकर कहा – "महाराज यह सब आपकी ठीक है पर मेरी एक इच्छा है कि - बेटे का मुह

महाराज ने बीच में ही बात काटकर कहा – 'हां। हां। मैं समझ गया। मुझे पहले से ही मालूम पड़ गया था, अब वह समय आने वाला है जब तुम्हारी इन सेवाओं का फल साक्षात् जीता जागता नजर आजायेगा।

उनको पूर्ण आशा होगयी थी कि वे अब श्रीमती जी पर अवश्य विजय पालेंगे। जब श्रीमती जी यह समाचार सुनेगी तो साधुओं से वैर करना छोड़ देगी। यह सोचकर भगत जी साधु महाराज का रोटी का प्रबन्ध करने के लिये घर पर चल दिये। उनका हृदय उससमय खुशी के मारे बल्लियों उछल रहा था।

इधर श्रीमती जी को पहले से ही से मालूम होगया था कि आज फिर कोई पाखण्डी पहुंचा हुवा है। उनको पहले ही से किसी ने खबर दे दी थी। वे पहले से ही जली भुनी बैठी थी। भगत जी के आते ही बड़ी खुशी से कहा – " लो आज मुझे मुंह मांगा इनाम दो। आज मैं एक बड़ी अच्छी खबर लाया हूं।"

यह सुनने की देर थी कि श्रीमती जी का क्रोध का फव्वारा फूट पड़ा। वे बोली – क्या खबर लाए हो, यही न कि एक पाखण्डी यहां आया है और उसके लिये अब मैं रोटी बनाऊं यह काम मुझसे अब न होगा। बहुत निभा चुकी।

भगत जी क्रोध के फव्वारे की इन गरम २ छींटों को न सह सके और एक दम पीछे हट गये। सोचने लगे अच्छा तमाशा है, यहां पहले ही बेतार वर्ती से खबर पहुंच गई। यह तो उलटे लेने के देने पड़ गये। जरा नरमी से बोले साधुओं से तुम्हें इतना द्वेष क्यों है, उन बिचारों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा। भला तो सब कुछ मैं हूं न इतना सुनते ही श्रीमती जी की क्रोध की डिग्री और भी चढ़ गई। वे हाथ मटका २ कर कहने लगी मैं घर की कौड़ी छोड़ ही हूं जो उन पाखण्डियों का काम करते २ सारी जिन्दगी बिताऊं। देखो तो जरा उन सण्डों को शरम तक नहीं आती रोज कोई न कोई आ ही धमकता है। जब देखा कि रोटी के लाले पड़ रहे हैं तो बन गये साधु। साधु बाबा

वे पूछते कि क्या खाओगे तो कहते हैं कि भाई हम तो पक्का खाते हैं। कई सेर खाजाते हैं पर डकार तक नहीं लेते। ऐसे ही काम चलता रहा तो किसी दिन सारा घर चौपट होजायगा।

सहिष्णुता की भी कोई हद होती है। मनुष्य सब कुछ सह सकता है पर अपने ही सामने ही सामने धर्म पर किये गये आघातों को नहीं सह सकता। जहां तक होसकता है उसका प्रतिकार देने की कोशिश करता है। वे झुंझलाकर बोले - तुम्हें कुछ धर्म कर्म का भी ख्याल है, मुफ्त में ही विचारे साधु महात्माओं को बदनाम कर रही हो, तुम्हारा इसमें क्या बिगड़ता है खर्च तो सारा मेरा ही होता है, तुम्हारी गांठ से तो मैं कुछ नहीं ले रहा।

यह सुन श्रीमती जी एकदम बोल उठी - लो हो सम्हालो अपना राजपाट। मुझे इसकी आवश्यकता नहीं है। मैं किसी की भी दबैल नहीं हूं। तुम अपना खर्च करते हो तो क्या मेरे लिये और क्या दिखाते हो। यह सुन, भगत जी के पैर तक धरती से उखड़ गये। इस समय उनमें एक मिनट खड़े होने तक की भी हिम्मत न थी। उन्हें आशा न थी कि बात यहां तक पहुंच जायगी वे चुपचाप बाहर निकल गये और धनिया नौकर से महाराज के लिये दूध लाने को कहा और सीधे मन्दिर पर चलेगये।

बातों ही बातों में रात बहुत बीतगई। थोड़ी देर बाद भगत जी महाराज को दूध पिला और उनके सोने का इन्तजाम कर घर पर आगये और चुपचाप अपनी खाट पर पड़गये। आज भगत जी को अपनी हार का अनुभव हुआ था। वे सोच रहे थे कि दोनों आदमी सब कुछ अपने सुख के लिये करते हैं किन्तु उसका परिणाम उलटा ही होता है। आज उनको स्पष्ट मालूम होगया था कि गृह चिन्ता परमात्म चिन्तन में कितनी बाधक है। उनके मनमें एकदम यह ख्याल आया कि इस जंजाल को ही छोड़ देना ठीक है। अब यह रोज रोज के झंझट नहीं सहे जाते। इस ख्याल ने उन पर जादू का काम किया - वे एकदम अपनी चारपाई से उठे और घर से बाहर निकल खड़े हुवे। थोड़ी देर में न जाने वे कहां अन्धकार में विलीन होगये। निराशा मनुष्य से भयंकर से भयंकर काम करा लेती है।

(3)

सवेरे सारे गांव में खबर फैल गई

कि भगत जी कहीं चले गये। सारे
मे उनकी खोज हुई पर सब निष्फल।
सब को मालूम था कि भगत जी के घर
मे रोज कोई न कोई झगड़ा होता ही
रहता था। अब सब ने समझ लिया
कि यह सब करतूत चुनिया (भगत
जी की स्त्री) की है। सब आदमी
अब उसको घृणा की दृष्टि से देखने
लगे। इधर चुनिया की बुरी दशा थी
उसे स्वप्न में भी ख्याल न था कि
बात यहां तक पहुँच जायगी। वह
अब बहुत पछता रही थी। आखिर
आखिर उसका हृदय भी एक स्त्री
का हृदय था। उससे देरतक पति
की विरहाग्नि न सही गई। उसकी
ज्वाला से उसका हृदय पाषाण
पिघल गया। उसका चेहरा मुर्झाते
हुए फूल के समान होगया। अब
उसका जीवन बिलकुल पलट
गया था। अब वह साधुओं
बन गई थी। मन्दिर का सारा
काम वह स्वयं अपने हाथों ही से
करती थी उसने अपने जीवन का
लक्ष्य ही साधु सेवा बना लिया था।
वह समझती थी कि शायद स्वामी
के ही पद चिन्हों पर चलने से
उसके अपराधों का प्रायश्चित्त
होजायगा। भगत जी के जाने के

दो तीन महीने बाद ही उसके एक पुत्र हुआ
उसने बड़ा उत्सव मनाया तीसियों साधुओं
को भोजन कराया उस समय उसका
दुःख बहुत कुछ कम होगया था। अपने
पुत्र को देखकर वह अपने जी को हलका
करती रहती थी।

एक दिन की बात है कि एक साधु
महाराज उस गाँव मे पधारे। वे अधेड़
उमर के थे। उनकी दाढ़ी के बाल खिचड़ी
होगये थे। सिर पर लम्बी जटायें शोभा
पा रही थी। लाल लाल चेहरे से तेज
[illegible] टपक रहा था। साधु महाराज ने गाँव
के बाहर पेड़ के नीचे ही अपना आसन
जमाया। बहुतों के कहने पर भी आप
गाँव में नहीं गए। जब चुनिया को मालूम
पड़ा तो वह भी अपने बच्चे को गोदी
में उठा साधु के दर्शन करने चल दी। वहाँ
पहुँच उसने बच्चे को साधु के पैरों पर
रख दिया और स्वयं भी पैरों पर गिर
कर रोने लगी। मा को रोता देखकर
बच्चा भी रोने लगा। कैसा करुणामय
दृश्य था। जितने भी आदमी वहांपर
उपस्थित थे सब की आँखों में आँसू
झलक आये। तब चुनिया ने रोते २
कहा - महाराज इस बच्चे के पिता
कुछ वर्ष हुए मुझ अभागिन को छोड़
कहीं चले गये। उनको घर से निकालने
का कारण मैं ही अभागिन हूँ। आप

योगी हैं आ बताइये उनका कुछ पता मिल सकता है। साधु महाराज भी भी अपने को ज्यादह रोक न सके उनके साहस बांध टूट गया, उन्होंने बच्चे को उठा छाती से लगा लिया और कहा कि मैं ही अभागा इसका पिता हूं।

चुनिया यह सुनकर खुशी के मारे पागल होगई, वह झपटकर स्वामी के पांवों से लिपट गई। थोड़ी देर तक इसी तरह से उन्होंने अपने शोक संतप्त हृदय को अश्रुधाराओं से शांत किया। इतने में सारे गांव में खबर फैल गई कि भगत जी फिर आगये हैं।

हरिद्वार की जिला कान्फ्रेंस

जोर का लाठी चार्ज -- कई घायल ----

(विशेष सम्वाददाता द्वारा)

२८ मई की सायं काल सहारनपुर जिला कान्फ्रेंस हरिद्वार में मनाई गई। इस अवसर पर पुलिस का अपनी ओर से पूरा प्रबन्ध था। कान्फ्रेंस के लिए मनोनीत सभापति मि. मजहर अली सोख्ता पहले ही अलाहाबाद गिरफ्तार कर लिए गए थे अतः पण्डित जयदेव जी विद्यालङ्कार को कान्फ्रेंस का सभापति चुना गया। ठीक ८.३० बजे नियत स्थान गंगा घाट पर पण्डित जी ने बिगुल बजाया और राष्ट्रीय पताका फहरा दी। ठीक वहीं दारोगा साहिब अपने पुलिस दल के साथ स्थिति का अवलोकन कर रहे थे। यह बिगुल जिले के भिन्न २ भागों से आए प्रतिनिधियों को इस बात का इशारा था कि वे नियत स्थान पर एकत्र हो जावें और पुलिस को भी इशारा साबित हुआ कि वे उन को तितर बितर कर दें और कान्फ्रेंस न होने दें। सब प्रतिनिधि भागे भी और दौड़े और कान्फ्रेंस प्रारम्भ कर दी। दरोगा ने झण्डा लेना चाहा पर प्रतिनिधियों ने देने से साफ इन्कार कर दिया। इस पर सिपाहियों को लाठी चलाने का हुक्म दिया गया। सब प्रतिनिधि झण्डे पर लेट गए और पुलिस ने उन को बुरी तरह लाठियों से पीटा। कई प्रतिनिधियों के सिरों से खून की धारायें बहती देखी गईं। पुलिस आवेश में आने से [illegible] हो गई और कई कई तीर्थयात्रियों को भी लाठी की चोटें आईं। एक आदमी के सिर से बेतहाशा खून बह रहा था, उस के बावजूद दारोगा से विनम्र शिकायत की कि मुझे बिना बात पीटा गया और फिर एक सिपाही ने गंगा में फेंक दिया। यह आदमी साफ तौर से विदेशी वस्त्र पहिने हुए था अतः उस के कांग्रेस का होने का सुबहा भी नहीं हो सकता था। इसी प्रकार एक स्त्री अपने ८ वें साल के बच्चे को ले कर दारोगा के पास आई और शिकायत करने लगी कि उस के नन्हे बच्चे को भी बिना बात सिपाहियों ने मारा है जिस से उस के सिर पर कई एक जख्म हो गए हैं। उस ने बताया कि ये चोटें एक कानस्टेबल के मुसलमान जमादार की तरफ से आई हैं जो कि इस मौके के लिए खास बुलाया गया था। कुछ और यात्रियों को भी जो कि तीर्थ स्नान करने के लिए हरिद्वार आए हुए थे और पूजा के लिए फूल खरीद रहे थे, इस मुसलमान ने लाठी से मारा और उन के भी काफी चोटें आईं। कुछ साधु सन्यासी और हिन्दु यात्री पहले से ही इस बात से नाखुश थे कि इस मुसलमान को हर की पैड़ी पर क्यों लाया गया जब कि साम्प्रदायिकता वश मुसलमानों को आने की इजाजत नहीं है। इस पर उस के उपरोक्त व्यवहार ने आग में घी डालने का काम किया और जनता का क्रोध भड़क गया। सम्भव था कि जनता उसे

निबन्ध मंजरी

प्रतिमा – शास्त्र

श्री विनोद चन्द्र जी

जब हम किसी देश के इतिहास का अध्ययन करते हैं और उस देश के विविध ऐतिहासिक ग्रन्थों का अवलोकन करते हैं तो हम उन ग्रन्थों में अनेक विरोधी बातें पाते हैं तो हमें सन्देह होता है कि इन में तथ्य क्या है। इन तथ्यों को यथार्थ रूप में जानने के लिये हमारे पास इस के अतिरिक्त कोई साधन नहीं कि हम उस देश के प्राचीन साधन, सिक्के, शिलालेख एवं मूर्त्यादि से किसी यथार्थ परिणाम की खोज करने का प्रयत्न करें। हम केवल लेख, मूर्ति किंवा ताम्रपत्र का अवलोकन ही नहीं करते अपितु उन में समय समय पर होने वाले परिवर्तन का भी ज्ञान प्राप्त करने का यथाशक्ति प्रयत्न करते हैं। अनेक कष्टों एवं प्रयत्नों के बाद निकाले हुए परिणाम को भी हम निःसन्देह निर्णय मानने के लिये समर्थ तैयार नहीं हो सकते। प्रत्येक विद्वान की अपनी रुचि के अनुसार परिणाम में विभिन्नता होती है, और यही परिणाम की विभिन्नता ऐतिहासिक तथ्य को जानने में बाधक होती है।

ताम्रपत्र एवं सिक्के इत्यादि से तो हम एक निश्चित समय तक के ऐतिहासिक ज्ञान एवं सभ्यता का अनुमान कर सकते हैं किन्तु यदि हम मूर्तियों से कोई निश्चित परिणाम निकालने का यत्न करें तो सम्भवतः हम एक भयंकर भूल करेंगे।

आज कोई भी व्यक्ति इस बात का दावा नहीं कर सकता कि जगन्नाथ पुरी, डाकोर, श्रीनाथ, रामेश्वरम्, सोमनाथ इत्यादि पवित्र तीर्थ स्थानों की मूर्तियों की आकृति यथापूर्व है। यद्यपि मूर्ति निर्माताओं के द्वारा चेष्टा यह की जाती है कि मूर्तियाँ पूर्ववत् बनें तथापि सूक्ष्म-

त्रिमूर्ति

श्री सुधाकर जी

हे आद्या शक्ति की त्रिमूर्ति तुम्हें शतशः प्रणाम है। परमात्म देव की सत्य ज्ञानमय अनन्त शक्ति की त्रिविध मूर्ति! हम तुम्हारी उपासना करते हैं। अयि त्रिभुवन वन्दिनी त्रिमूर्ति! उन प्राचीन ऋषियों ने, जो संसार के इतिहास के, सर्वोच्च कालीन भारत के वास्तविक निर्माता थे तथा जिन्होंने भारत में असीमता के सन्देश को, आदर्शमय सभ्यता की तथा त्याग और तपस्यामय असीम जीवन की स्थापना की थी ब्रह्मा विष्णु महेश के स्वरूप में तुम्हारी अर्चना की थी। आज हम तुम्हारी इस नव युग के सौम्य प्रभात में पुनः उपासना करते हैं। हे आद्या शक्ति! तुम्हारी अनन्त शक्ति को हम अपने क्षुद्र जीवन में दार्शनिक संत एवं कवि के रूप में विकसित हुआ देखते हैं। ब्रह्मा, विष्णु महेश तुम्हारे ही सत्य, शिव सुन्दर तुम्हारे ही त्रिविध रूप थे। उसी त्रिविध शक्ति के उपासक दार्शनिक संत एवं कवि आज तुम्हारे उसी सन्देश को, जो असीम होते हुये भी जीवन और विश्व की सादगी से परिपूर्ण है नवयुग में पुनः प्रतिष्ठा कर रहे हैं। दार्शनिक सत्य की संत शिव की कवि सुन्दर की उपासना करता है। जिस प्रकार मानव जीवन कर्म ज्ञान और भक्ति के सम्मिश्रण के बिना पूर्णता को प्राप्त नहीं कर सकता तथा जिस प्रकार एक आदर्श चरित्र का पूर्ण विकास शक्ति शील और सौन्दर्य के सम्मिश्रण में है। जिस प्रकार हमें आदर्श चरित्र के सम्पूर्ण सिंहावलोकन के लिए उस के निर्गुण रूप में शक्ति को उस के सगुणरूप में शील को तथा उस के साकार रूप में सौन्दर्य की छवि का अवलोकन करना पड़ेगा। उसी प्रकार सत्य, शिव सुन्दर

की साक्षात् अनुभूति के लिए
इसके अन्तःकरण में दार्शनिक के
चिन्तन का मन की साधना का
तथा कवि की कल्पना का उचित
मात्रा में तथा अन्योन्याश्रित होकर
रहना अत्यन्त आवश्यक है। दार्श-
निक सत्य की उपासना करता है। दा-
र्शनिक का किसी वस्तु को देख कर
उस की तह में भीतर बैठ कर उस
का विश्लेषण करने लगता है।
वह अपरोक्ष सत्ता की मूल अभ्यन्तर
ग्रन्थियों को खोलने में अपने जीवन
की सार्थकता अनुभव करता है। इस
प्रकार वह सर्वगत सत्य का अपने
अन्दर बोध होते ही उसे मानवीय
जीवन में
बिलकुल नहीं मालूम पड़ता। वह
नीचातिनीच पुरुष में भी उसी सत्य
का अवलोकन करता है। वह कि-
सी से घृणा नहीं करता। अपितु
घृणा करने के स्थान में कहता
है कि — हे प्रकाशमय हे शक्तिमान्
उठो जागो अपने सत्य स्वरूप को
पहचानो। उसे प्रकट करो। यह तुच्छ
अभिव्यक्ति तुम्हारे योग्य नहीं है।
सत्य में ऐसा स्वयं सिद्ध और
स्वाभाविक आकर्षण बल होता
है कि सत्य शोधक व सत्य-
वान् खुशी खुशी अपने को उस
पर न्योछावर कर देते हैं। दार्श-
निक की यही सर्वोत्तम परीक्षा है,
पहचान है। वह सत्याग्रही नहीं जो
सत्य की रक्षा के लिए अपने को अर्-
पण न कर दे। मिट्टी में मिल जाने
पर भी सत्याग्रही का सत्यप्रेम और
सत्यभक्ति बढ़ती जाती है। सत्य स्वयं
ही सुरक्षित होता है। इस का अर्थ
यह है कि जिस ने सत्य को पकड़ लिया
है जो सत्य से परिपूर्ण है वह स्व
अपने को सुरक्षित समझता है और
उस के निमित्त आने हुए संकटों को
आनन्द से सहन करता और मृत्यु तक
को गले लगाता है।

सन्त प्रेम की उपासना
करता है। उस का जीवन साधना
मय होता है। सन्त जीवन मनुष्यत्व का
ईश्वरत्व में लीन होने का क्रम विकास है।
सन्त लोग अपने जीवन को यम नियमों
के द्वारा तपश्चर्या से निखार कर
परमात्मा के चरणों में झुका देते हैं।
उन के सभी कर्म सभी व्यापार
ईश्वरोन्मुख होते हैं। उन के लिए
जगत के सभी पदार्थ परम तत्त्व के
साथ अपना सम्बन्ध चरितार्थ करते
हैं। वे किसी चीज को देख कर उस
के रहस्य को खोजने के लिए उस
की तह में बैठ कर सोचते नहीं
पर वे रहस्य के संकेत का शीघ्र
ही अनुभव कर लेते हैं और तन्मय
होकर अपनी सत्ता खो कर सन्निध-

संत वे तादात्म्य स्थापित कर
लेते हैं। वे सभी जगह अपने
उपास्य देव को ही देखते और
सर्वत्र अपने आराध्य देव को ही
अभिव्यक्त कर संयोग की मधुर
भावना में लीन रहा करते हैं।
संत लोग धर्म की उपासना करते
हैं। मत-मतान्तरों के धर्म की नहीं
अपितु विश्व धर्म की। जो धर्म
इन्द्रियातीत है। इन्द्रियों का विषय
नहीं है। वह तर्क से भी परे है।
वह बुद्धि का विषय नहीं है।
संत लोग मनुष्यत्व के उपासक
हैं। धर्म तो मनुष्य की अन्तः
~~प्रवृत्ति~~ को परात्म का निज बना
की भावना त्रिमूर्ति से एकात्म स्था-
पित करने का नाम है। संत उसी
की साधना करता है। संत का
स्वरूप त्याग मय है। वह त्याग
उस के हृदय के बंधन को दूर
करता है। त्याग हृदय को विशाल
और शक्तिशाली बनाता है। संत
को त्याग ही उस के सच्चे स्वरूप
का अवलोकन कराता है। उस को
सुखी और आत्मतृप्त होने में सहायता
देता है। संत का त्याग अपने जीवन
को रिक्त करने के लिए नहीं,
अपितु पूर्ण करने के लिए है।
प्रेम की चरम सीमा त्याग में है।
धर्म की भी अन्तिम सन्धि त्याग में
है। इसी भावना के अनुसार सन्त दुःख
का दमन नहीं करता अपितु दुःख
को अपना कर उस को सुख का
स्वरूप देता है। वस्तुतः जिस प्रकार
शारीरिक प्रेम वासना का अंश मात्र
रूप है अर्थात् यदि कोई सुन्दर
फूल देख कर उस को तोड़ने की
इच्छा कर, सुन्दर रत्न देख
कर उठा लेने की इच्छा करे तथा
सुन्दर मानवीय रूप को देख कर
उसे अपने वशवर्ती बनाने की
इच्छा करे तो वह प्रेम का वास्तविक
पुजारी नहीं अपितु आसक्ति का
गुलाम है वासना का वशी है।
सन्त ऐसी नहीं है जो सुन्दर फूल
में केन्द्रित होने सौन्दर्य को मान
बीच सुन्दर रत्न की कीर्ति को उसी
परम तत्व की विशाल सौन्दर्य का
अंश ~~[illegible]~~ है मान समझ कर उसी
के प्रेम से प्रभावित हो कर उस के
सौन्दर्य में अपनी सत्ता लीन कर
देता है। सन्त की साधना का यही
आदर्श है। वह अपने को अनन्त वि-
भूति में मिलाना चाहता है। वह
सांसारिक लोगों की तरह संग्रह प्रधान
नहीं है। जो संग्रह करना चाहता है
वह मानो अपने अधिकार की सीमा
को संकुचित करता है। विश्व के

अपना सम्बन्ध तोड़ कर वह एक क्षुद्र सीमा में निवास करता है। परन्तु सन्त त्याग प्रधान है। त्याग से वह विश्व को अपना बना लेता है। इस से उस का जीवन कम नहीं होता अपितु पूर्ण हो जाता है। जल बिन्दु तभी तक क्षुद्र है जब तक वह अपने को पृथक रखता है। परन्तु ज्यों ही वह अपने अस्तित्व को अनन्त समुद्र में त्याग कर देता है त्यों ही वह अनन्त हो जाता है। वास्तव आनन्द सेवा आत्मत्याग में ही है।

कवि सुन्दरं की उपासना करता है। कवि स्वतन्त्रता का पुजारी है। आदर्श कवि को स्वतन्त्रता उतनी ही प्यारी है जितना कि मनुष्य को अपने देह के लिए हवा प्यारी है। कवि के लिए स्वतन्त्रता आत्मा का गीत है। कवि का जीवन हवा की तरह स्वच्छन्द होता है। सुमन के सौरभ की भांति वह विश्व में रहते हुये भी स्वर्गीय सम्पदा है। कवि जानता है क्यों कि वह अमर जीवन के अमर संगीत को रोक नहीं सकता। वह भावना के आधार अनुभूति रूप से विश्व के समस्त विकास एवं विलास को देख देख कर उस के मूल सौन्दर्य की माधुरी का रसपान कर उन्मत्त एवं विस्मय हो जाता है। तब उस के अन्तः सागर की धारा फूट निकलती है और वह उसी में ही अनुपम प्यारी बहन भावना की झलक को देखता है।

कल्पना विलास के विकास और साधना दो पंख हैं जिन के सहारे कवि उड़ता उड़ता इतनी दूर चला जाता है कि वह स्वर्ग की कल्पना को भी हेय समझने लगता है। उस समय वह अपने अन्दर अपनी सृष्टि को देखता है और उस नवीन सृष्टि में वह जीवन और मृत्यु दोनों से ऊपर उठ जाता है। चिन्तन कवि की कल्पना को उच्छृंखल होने से बचाता है और साधना उस को परिमार्जित एवं संस्कृत बनाती है। इस प्रकार संगीतमय 'सुन्दरम्' की रचना होती है। 'सुन्दर' की रचना में चिन्तन भावक को जागृत करता है तथा साधना के द्वारा भावना उद्बुद्ध होती है।

भावों का अनुभव तो सभी करते हैं परन्तु जो अनुभव करा सकता है वह कवि है। जो विश्व प्रकृति के अन्तः स्वरूप को पूर्ण विकसित कर के हमारे सम्मुख उपस्थित करता है वह कवि है। कवि का काव्य एक अद्भुत दर्पण है। हम अपने व्यक्तिगत भावों को काव्य द्वारा जब अनुभव करते हैं तब वे हमारे ही व्यक्तिगत भाव नहीं रहते अपितु एक प्रकार

कार्यक्रम
नियम

गुरुकुलीय राष्ट्रीय महासभा के
नियम

१ प्रतिनिधि – महाविद्यालय का-र्यकारिणी सभा के सभासद (साधारण और प्रतिष्ठित "गुरुकुलीय राष्ट्रीय महासभा" के 'प्रतिनिधि' समझे जायेगे।

२ प्रतिष्ठित दर्शक – (क) गुरुकुल के उपाध्याय, स्नातक व अन्य उच्चपदाधिकारी महोदय 'प्रतिष्ठित दर्शक' समझे जायेगे।

(ख) राष्ट्रीय महासभा के प्रधान महाशय किन्ही अन्य महोदय को भी प्रतिष्ठित दर्शक बना सकते हैं।

३ प्रस्ताव तथा संशोधन :- (क) 'विषय-समिति' मे आने वाले प्रस्तावो तथा संशोधनो का निर्णय 'प्रस्ताव समिति' के अधीन होगा। "प्रस्ताव समिति' के पास नियत समय के अन्दर आये हुए प्रस्ताव और संशोधन ही 'विषय-समिति' मे उपस्थित किये जा सकेगे।

(ख) 'विषय समिति' की बैठक मे कोई नया संशोधन स्वागताध्यक्ष की अनुमति से किया जा सकता है।

(ग) प्रत्येक प्रस्ताव या संशोधन 'विषय समिति' की अनुमति से ही प्राप्त करके ही महासभा के खुले अधिवेशन मे पेश किया जा सकता है।

४ सम्मति का अधिकार – प्रस्तावो पर सम्मति देने का अधिकार प्रतिनिधियो, स्वागत समिति के सदस्यो तथा प्रतिष्ठित दर्शको को ही होगा। महासभा के सभापति केवल निर्णायक सम्मति दे सकेगे।

५ भाषण का अधिकार :– महासभा के अधिवेशन मे भाषण करने का अधिकार उन्ही सज्जनो को होगा जिन्हे के नियम तथा सम्मति देने का अधिकार है।

६ विषय समिति का संगठन – विषय समिति का संगठन निम्न प्रकार से होगा :–

(क) राष्ट्रीय महासभा के मनोनीत सभापति।

(ख) स्वागत समिति के सदस्य।

(ग) प्रस्ताव समिति के सदस्य।

(घ) महाविद्यालय की प्रत्येक श्रेणी से निर्वाचित दो सदस्य (कुल मिलाकर श्रेणियों के आठ सदस्य होंगे)।

(ङ) महासभा के भूतपूर्व प्रधान।

(च) प्रधान मन्त्री द्वारा निमन्त्रित किये गये प्रतिष्ठित दर्शक।

६ मुद्रा का अधिकार -(क) प्रतिष्ठित दर्शकों के लिये मुद्रायें नियत होंगी। मुद्रायें यथासमय प्रधानमन्त्री के पास से मिल सकेंगी। उल्लिखित अधिकारों का प्रयोग करने के लिये नियत मुद्राओं का होना आवश्यक है।

(ख) मुद्राओं का प्रयोग केवल वे ही महानुभाव कर सकेंगे जिनके नाम उन पर अङ्कित होंगे।

८ - भाषण सम्बन्धी व्यवस्था - भाषण के लिये समय की व्यवस्था यथासम्भव की जायेगी। सभापति महोदय समयानुसार ही किसी को भाषण करने या न करने की व्यवस्था देंगे। वे वक्ताओं को विषय से बाहिर न जाने के लिये तथा सीमा के अन्दर बोलने के लिये कहेंगे।

९ आमन्त्रित सम्मति '- महासभा के खुले अधिवेशन तथा विषय समिति में उठाये गये व्यवस्था सम्बन्धी विवादों के लिये [illegible] समिति के [illegible] ... [illegible] सभापति [illegible] ... [illegible] स्थानों में [illegible] होगी।

१० - ४० " [illegible]

११ - [illegible] समिति का [illegible]

आवश्यक सूचनायें

१ "गुरुकुलीय एकादश राष्ट्रीय महासभा" सम्बन्धी सब पत्रव्यवहार निम्न पते से करना चाहिये।

सेवा में प्रधानमन्त्री "गुरुकुलीय एकादश राष्ट्रीय महासभा" गुरुकुल-
काङ्गड़ी, सहारनपुर

२ विषय समिति में आने वाले प्रस्ताव 'प्रस्ताव समिति' में होकर ही आ सकेंगे। जो महानुभाव राष्ट्रीय महासभा में कोई प्रस्ताव उपस्थित करना चाहें वे १३ मई (शुक्रवार) की सायङ्काल के ४ बजे तक अपना प्रस्ताव "संयोजक प्रस्ताव समिति" के पास भेज दें। प्रत्येक प्रस्ताव की अलग २ तीन प्रतियाँ कागज के एक ओर स्याही से लिख कर भेजनी होंगी।

३ विषय समिति में प्रस्तुत किये जाने वाले प्रस्ताव "प्रस्ताव समिति" की ओर से "विषय समिति" की बैठक से १४

[illegible] के पेश होने वाले प्रस्ताव —

[illegible]

... मन्त्री के पास भेज देने चाहिये। 'विषय समिति' के सदस्यों के प्रार्थना-पत्र का फार्म प्रधान मन्त्री से मिल सकेगा।

४ विषय समिति की सूचना महासभा की प्रथम बैठक से ३६ घण्टे पूर्व प्रधान मन्त्री के कार्यालय से रवाना कर दी जायेगी।

एकादश गुरुकुलीय राष्ट्रीय महासभा
के
नियम और उसमें पेश किये गये प्रस्ताव —

१५ मई १९३२ रविवार - प्रातः।

६ - से जलूस।

६-४५ से प्रथम बैठक का प्रारम्भ

६-४५ से ७ तक गीति

७ से ७-१५ तक स्वागताध्यक्ष का भाषण।

७-१५ से ७-२५ तक सभापति का प्रस्ताव।

७-२५ से ७-४५ तक सभापति का भाषण।

७-४५ से ७-५५ तक प्रस्ताव सं. १ -

१ यह गुरुकुलीय राष्ट्रीय महासभा श्रीयुत मोतीलाल जी नेहरू, श्री मुहम्मद अली, श्री गणेशशंकर विद्यार्थी, महाराजा महमूदाबाद, श्री ब्र. सर्वमित्र जी, श्री ब्र. सत्यभूषण जी तथा श्री ब्र. हरिश्चन्द्र जी की अकाल मृत्यु पर समवेदना प्रकट करती है। तथा गत दो वर्षों के संग्राम में पुलिस और फौज द्वारा किये गये लाठी प्रहार द्वारा तथा गोली आदि से वीरगति प्राप्त करने वाले अज्ञात वीरों और वीराङ्गनाओं के प्रति अपनी श्रद्धाञ्जलि समर्पित करती है, और उनके संतप्त परिवारों को विश्वास दिलाती है कि समग्र देश इस दुःख में उनके साथ है।

प्रस्तावक श्री सभापतिजी

७-५५ से ८ तक प्रस्ताव सं. २ -

३ यह राष्ट्रीय महासभा महात्मा गान्धी द्वारा स्वतन्त्रता संग्राम में भाग लेने के लिये किये गये आह्वाहन पर समुचित ध्यान देने पर तथा उनके नेतृत्व में पूर्ण विश्वास रखने पर राष्ट्र को बधाई देती है। (प्रस्तावक श्री सभापतिजी)

८ से ८ २५ तक प्रस्ताव सं ३ ।–

४ यह महासभा गुरुकुल तथा प्रत्येक कुलवासी से आशा करती है कि वह अपने व्यवहार में खद्दर तथा अन्य में यथा सम्भव स्वदेशी वस्तुओं का ही उपयोग करेगा। महासभा एतदर्थ गुरुकुल के पुराने नियम की तरह; जिसके अनुसार प्रत्येक उपाध्याय को महाविद्यालय में खादी के वेश में ही आना चाहिये, उपाध्यायों तथा आचार्यजी का ध्यान खींचना चाहती है और खास तौर पर परिवारों के सब भाई बहिनों से अपील करती है कि वे घरों में सिर्फ खद्दर तथा अन्य वस्तुओं में स्वदेशी का ही इस्तमाल करें। (प्रस्तावक श्री प्रो विश्वनाथजी) तथा अनुमोदक श्री मा विशम्भरसहायजी

८-२५ से ८-४० तक प्रस्ताव सं ४ -

४ गुरुकुल के उपाध्यायों तथा अन्य कार्यकर्ताओं से यह महासभा प्रार्थना करती है कि वे पहले की तरह अब भी राष्ट्र सेवा के लिये यथाशक्ति कुछ [illegible]

[illegible]

५ यह महासभा [illegible]

[illegible] राष्ट्र निर्माण के [illegible]

हुई चाहती है [illegible]

विद्यार्थी इनमें से कोई न कोई सेवा [illegible] स्वीकृत करें और यह प्रतिज्ञा लें कि कम से कम सप्ताह में एक बार अपना समय इस कार्यक्रम को पूरा करने में अवश्य देगा।

प्रस्तावक श्री प चन्द्रकान्त जी
अनु श्री सुखदेवजी

९ १० से १० तक प्रस्ताव सं ६ –

६ यह राष्ट्रीय महासभा अहिंसा पर अपने दृढ़ निश्चय को पुनः दोहराती है और इस महासभा की यह दृढ़ सम्मति है कि हिंसा पूर्ण कार्य वर्तमान राष्ट्रीय आन्दोलन के लिये हानिप्रद है। अतः यह महासभा चिदनापुर इत्यादि में किये गये हिंसा पूर्ण प्रयत्नों की तीव्र निन्दा करती है और आशा करती है कि प्रत्येक देशवासी हिंसात्मक कार्यकर्ताओं को अनुत्साहित ही करेंगे।

७ यह महासभा आर्थिक दशा के लिये रेल, तार, डाक आदि के यथा सम्भव

[illegible] और पेश होने वाले प्रस्ताव

[illegible] मानती है [illegible]

[illegible] पर [illegible]

[illegible] करने [illegible]

[illegible] की [illegible]

[illegible] कार्यों को अहिंसा-

[illegible] विरुद्ध होने से निन्दनीय

[illegible] है और उनसे पूर्ण असहमति प्र-

[illegible] करती है।

प्रस्तावक श्री नित्यानन्द जी
अनु० [illegible] जी

संशोधन – प्रस्ताव सं ६ (ब) को

निम्न ३ भागों में विभक्त किया जाय (अ)

यह राष्ट्रीय महासभा अहिंसा पर अपने दृ

ढ़ निश्चय को पुन दोहराती है। (ब) इस

महासभा की सम्मति है कि कांग्रेस कार्य

कर्ताओं द्वारा किये गये हिंसात्मक कार्य

वर्तमान राष्ट्रीय आन्दोलन के लिये हानि-

प्रद है। (स) शेष भाग को 'स' मान कर

उड़ा दिया जाय।

संशोधक श्री सत्यपालजी १३
अनु श्री वासुदेवजी

१० से १० १५ तक प्रस्ताव सं ७ —

७ (क) इस महासभा की यह सम्मति है कि देशी रियासतों की प्रजा और उन के शासक दोनों को हित की दृष्टि से उन्हें अपनी रियासतों में [illegible] उत्तर-दायित्व पूर्ण शासन स्थापित कर देना चाहिये।

(ख) यह महासभा रियासतों की [illegible] को विश्वास दिलाती है कि यह उत्तरदायित्वपूर्ण शासन को स्थापित करने में उनके उचित और शान्तिमय प्रयत्नों से महासभा की पूरी सहानुभूति है।

प्रस्तावक श्री प० वीरेन्द्रजी
अनु श्री लक्ष्मण जी १९

१० १५ से १०-३० तक प्रस्ताव सं ८ -

८ इस महासभा की सम्मति में प्रत्येक देश वासी को आम तौर पर सब विदेशी वस्तुओं विशेषत विलायती कपड़ा और वृटिशमाल का पूर्ण बहिष्कार करना चाहिये तथा व्रत लेना चाहिये कि यथासम्भव प्रत्येक वस्तु हिन्दुस्तान की बनी हुई ही इस्तमाल करे।

प्रस्तावक श्री सत्यपाल जी १३
अनु श्री वासुदेवजी

द्वितीय बैठक

७ ३० से ७-४५ तक प्रस्ताव सं ९-

९ यह महासभा स्वतन्त्रता को अपना ध्येय मानती है और १९३० में लाहौर में हुई ~~[illegible]~~ अ० भा० रा० महासभा की कार्य समिति की बम्बई वाली बैठक में स्वीकृत सविनय आज्ञाभंग की योजना को देश की वर्तमान स्थिति में उचित तथा न्याय समझती है।

प्रस्तावक श्री सोमदत्तजी
अनु श्री बालकृष्णजी

६-४५ से ८-१५ तक प्रस्ताव सं १०-

१० दक्षिण अफ्रीका की कोलोनेजाई-
न्स में वहां के [illegible] भारतीयों
को बसाने निश्चित शर्तों से जमीन ख-
रीदने की सुविधा देने, भारत में वापिस
लौटना बन्द करने आदि विषयों पर द-
क्षिण अफ्रीका सरकार तथा भारतीय सर-
कार में हुए समझौते की उन्नति की दि-
शा में प्रयत्न समझती हुई भी तब तक स-
न्तुष्ट नहीं हो सकती जब तक वहाँ ब-
से भारतीयों को वे ही हक प्राप्त नहीं होजाते
जो कि वहाँ के मताधिकार प्राप्त नागरि-
कों को है। और दुःख प्रगट करती है कि
भारत की वर्तमान पराधीनता की दशा
में महासभा अपने प्रवासी भाइयों को
विशेष सहायता नहीं कर सकती।

प्रस्तावक श्री वीरसेनजी
अनु श्री सुरेशचन्द्र जी

८-१५ से ८-४५ तक प्रस्ताव सं ११-

११ यह सभा मानती है कि बर्मानि-
वासियों को इस बातका अधिकार है कि
वे यदि चाहे तो भारत से पृथक होकर
स्वतन्त्र बर्मन राज्य स्थापित करें तथापि
वहाँ राष्ट्रिय संस्थाओं को गैर कानूनी क-
रके दमन द्वारा क्षुब्ध वातावरण में वास्त-
विक मत को प्रगट होने का अवसर न देक-
र अपने स्वार्थ को [illegible] पूरा करने के लिये
जानबूझकर बर्मा को पृथक करने की
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

८-४५ से ९-२० तक [illegible]

१२ यह महासभा [illegible]
प्रचार को [illegible] दृष्टि से राष्ट्र [illegible]
ये हानि कारक समझती है और प्रा-
न्तीय सरकार के अपनी आय बढ़ाने
के लिये शराब विषयक नीति में परि-
वर्तन करने पर रोष प्रकट करती है।

प्रस्तावक श्री सूर्यकान्त जी
अनु श्री मो लालचन्द्र जी

९-२० से १० तक प्रस्ताव सं १३-

१३ यह महासभा राष्ट्र को आश्वास-
न करती है कि कांग्रेस समस्त रा-
ष्ट्र की प्रतिनिधि है। यह प्रदर्शित करने
के लिये तथा देशमें एकता का वायुमण्डल
पैदा करने के लिये अविराम प्रयत्न
करे जिससे शुद्ध राष्ट्रियसिद्धान्तों के आ-
धार पर बना हुआ शासन विधान वि-
धान राष्ट्र के अन्तर्गत विभिन्न सम्प्र-
दायों को स्वीकृत हो सके। अत एव
करते हुए राष्ट्रिय मुस्लिम दल और
राजा प्रजा समझौते आदि प्रयत्नों की
प्रशंसा करती है तथा अल्पमत सम्प्र-

पृष्ठ ८१ पर देखिए-